

ॐ श्रीः ॥

* चाणक्यनीतिदर्पणः

* प्रथमोऽध्यायः

* श्रीगणेशाय नमः

प्रणम्य शिरसा विष्णुं बैलोक्याधिपतिं प्रभुम् ॥
नानाशास्त्रोद्भूतं वक्ष्येराजनीतिसमुच्चयम्॥ १ ॥

टीका—तीनों लोकोंके पालन करनेवाले सर्वशक्ति-
मान् विष्णुको शिरसे प्रणाम करके अनेक शास्त्रों
मेंसे निकालकर राजनीति समुच्चय नामक ग्रंथको
कहताहूँ ॥ १ ॥

अस्मिन्दृष्ट्यथाशास्त्रनरेजानातिसत्तमः ॥
इन्नोपदेशविव्यातंकार्यकार्यशुभाशुभम् ॥२॥

टीका—जो इसको विधिवत् पढकर धर्मशास्त्रमें
प्रसिद्ध शुभकार्य और अशुभकार्यको जानता है वह
आति उत्तम गिना जाता है ॥ २ ॥

तदहंसंप्रवक्ष्यामिलोकानांहितकाम्यया ॥
यस्यविज्ञानमात्रेण सर्वज्ञत्वं प्रपद्यते ॥ ३ ॥

चाणक्यनीतिदर्पणे ।

टीका—मैं लोगोंके हितकी बांधासे उस्को कहूँगा
जिसके ज्ञानमात्रसे सर्वज्ञता प्राप्त हो जाती है ॥३॥

मूर्खशिष्योपदेशेनदुष्टस्त्रीभरणेनच ॥
दुःखितैःसंप्रयोगेणपंडितोप्यवसीदाति ॥ ४ ॥

टीका—निर्बुद्धिशिष्यको पढानेसे, दुष्टस्त्रीके पोषन
से और दुःखियोंके साथ व्यवहार करनेसे पंडितभी
दुःख पाता है ॥ ४ ॥

दुष्टाभार्याशठमित्रंभृत्यश्वोत्तरदायकः ॥
ससर्पेचगृहेवासोमृत्युरवनसंशयः ॥ ५ ॥

टीका—दुष्टस्त्री, मूर्खमित्र, उत्तरदेनेवाला दास, और
साँपवाले घरमें वास, ये मृत्युरबूँपही हैं इसमें
संशय नहीं ॥ ५ ॥

आपदर्थेऽधनंरक्षेद्वाग्नक्षेद्वनैरपि ॥
आत्मानंसतनंरक्षेद्वारैरपिधनैरपि ॥ ६ ॥

टीका—आपस्ति निवारण करनेके लिये धनको
बचाना चाहिये, धनसेभी स्त्रीका रक्षा करनी चाहिये
सबकालमें स्त्री और धनोंसेभी अपनी रक्षाकरनी
उचित है ॥ ६ ॥

आपदर्थेऽधनंरक्षेच्छुमतश्वकिमापदः ॥
कदाचिच्चलितालक्ष्मीःसंचितोपिविनश्यति ॥ ७ ॥

अध्यायः १ ।

टीका—बिपत्तिनिवारणकेलिये धनकी रक्षाकरनी
उचित है क्यों कि श्रीमानोंकोभी आपत्ति आती है.
हाँ कदाचित् दैवयोग और चंचलहोनेसे संचित लक्ष्मी
भी नष्ट होजाती है ॥ ७ ॥

यस्मिन्देशेन संमानो न वृत्तिर्वचवांधवः ॥
न च विद्यागमोप्यस्तिवासंतत्रनकारयेत् ॥८॥

टीका—जिस देशमें न आदर, न जीविका, न बन्धु,
न विद्याका लाभ है वहां वास नहीं करना चाहिये ॥८॥

धनिकः श्रोत्रियो गजानदीवैद्यस्तु पञ्चमः ॥
पञ्चयत्रनविद्यं तेन तत्र दिवसं वसेत् ॥ ९ ॥

टीका—धनिक, वेदकाज्ञाता—ब्राह्मण, राजा, नदी,
और पांचवां वैद्य ये पांच जहां विद्यमान नर नहीं
हैं तहां एकदिनभी वास नहीं करना चाहिये ॥ ९ ॥

लोकयात्राभयं लज्जादाक्षिण्यं त्यागशीलता ॥
पञ्चयत्रनविद्यं तेन कुर्यात् त्रसंगतिम् ॥ १० ॥

टीका—जीविका, भय, लंज्जा, कुशलता, देनेकी
प्रकृति; जहां ये पांच नहीं वहांके लोगोंके साथ संगति
न करनी चाहिये ॥ १० ॥

जानीयात् प्रेषणे भृत्यान् बान्धवान् व्यसनागमे ॥
मित्रं चापत्तिकाले तु भास्यां च विभवक्षये ॥ ११ ॥

टीका—काममें लगानेपर सेवकोंको, दुःख आनेपर चान्धवों की, विपत्तिकालमें मित्रकी और विभव के नाश होनेपर स्त्रीकी परिक्षा होजाती है ॥ ३१ ॥

**आतुरेव्यसनेप्राप्तेदुर्भिक्षेशत्रुसंकटे ॥
राजद्वारेऽपश्चानेचयस्तिष्ठतिसबांधवः ॥१२॥**

टीका—आतुरहोनेपर दुःख प्राप्त होनेपर, कालपड़ने पर बेरियोंसे संकट आनेपर राजाके समीप और समशानपर जो साथ रहता है वही बन्धु है ॥ १२ ॥

**योध्रुवाणिपरित्यज्यअध्रुवंपरिसेवते ॥
ध्रुवाणितस्यनङ्गन्तिअध्रुवंनष्टमेवहि ॥१३॥**

टीका—जो निश्चित वस्तुओंको छोड़कर अनिश्चितकी सेवा करता है उसकी निश्चित वस्तुओंका नाश हो जाता है अनिश्चित तो नष्टही है ॥ १३ ॥

**वरयेत्कुलजांप्राज्ञोविरूपामपिकन्यकाम् ॥
रूपशीलाननीचस्यविवाहःसदृशेकुले ॥१४॥**

टीका—बुद्धिमान् उच्चम् कुलकी कन्या कुरुपाभी हो उसे बैर नीचकुलकी सुन्दरी हो तोभी उसको नहीं, इसकारण कि विवाह तुल्य कुलमें विहित है ॥ १४ ॥

**नर्खिनांचनदीनांचशृंगरणांशत्रुपाणिनाम् ॥
विश्वासोनैवकर्तव्यःस्त्रीषुराजकुलेषुच ॥१५॥**

अध्यायः २

टीका—नदियोंका, शस्त्रधारियोंका, नखवाले और सिंगवाले जन्तुओंका, स्त्रियोंमें और राजकुलपर विश्वास नहीं करना चाहिये ॥ १५ ॥

**विषादप्यमृतं प्राह्यमेध्यादपि कांचनम् ॥
नीचादप्युत्तमां विद्यां स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि । १६ ।**

टीका—विषमेंसे भी अमृतको, अशुद्ध पदार्थोंमेंसे भी सोनेको, नीचेसे भी उत्तम विद्याको, और दुष्ट कुलसे भी स्त्रीरत्नको लेना योग्य है ॥ १६ ॥

**स्त्रीणां द्विगुण अहारो लज्जाचापि च तुर्गुणा ॥
साहसंषड्गुणं चैव कामश्चाष्टगुणः स्मृतः । १७ ।**

टीका—पुरुषसे स्त्रियोंका अहार दूना लज्जा चौगुनी साहस छगुना, और काम आठगुना अधिक होता है ॥ १७ ॥

इति प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

अथद्वितियोऽध्यायः २

**अनुतं साहसं माया मूर्खत्वं मतिलोभिता ॥
अशोचत्वं निर्दयत्वं स्त्रीणां दोषाः स्वभावजाः । १ ।**

टीका—असत्य, बिनाबिचार किसी काममें झटपट लगजाना, छल, मूर्खता, लोभ, अपवित्रता और निर्दयता ये स्त्रियोंके स्वभाविक दोष हैं ॥ १ ॥

भोज्यभोजनशक्तिश्वरतिशक्तिर्वराङ्गना ॥
विभवोदानशक्तिश्वनाल्पस्यतपसःफलम् ॥२॥

टीका—भोजनके योग्य पदार्थ और भोजनकी शक्ति, सुन्दर स्त्री, और रतिकी शक्ति, ऐश्वर्य और दानशक्ति इनका होना थोड़े तपका कल नहीं है ॥ २ ॥

यस्यपुत्रोवशीभूतोभार्याचअनुगामिनी ॥
विभवेयश्वसंतुष्टस्तस्यस्वर्गाहैवहि ॥ ३ ॥

टीका—जिसका पुत्र वशमें रहता है और स्त्री इच्छाके अनुसार चलती है और जो विभव में संतोष रखता है उसको स्वर्ग यहाँही है ॥ ३ ॥

तेपुत्रायेपितुर्भक्ताःसपितायस्तुपोषकः ॥
तन्मित्रंयत्रविश्वासःसाभार्यायित्रनिर्वृतिः॥४॥

टीका—वही पुत्र है, जो पिता का भक्त है, वही पिता है, जो पालन करता है, वही मित्र है, जिसपर विश्वस है, वही स्त्री है, जिससे सुख प्राप्त होता है ॥ ४ ॥

परेक्षकार्यहंतारंपत्यक्षेप्रियवादिनम् ॥
वर्जयेत्तादृशंमित्रंविषकुंभंपयोमुखम् ॥ ५ ॥

टीका—आंखके ओट होने पर क्लाम ब्रिगाडे, सन्मुख होनेपर मीठी मीठी बात बनाकर कहे, ऐसे मित्रको मुँहुडेपर दूधसे और सब विषसे भरे बडे के समान

अध्यायः २ ।

बोडदेना चाहिये ॥ ५ ॥

नविश्वसेत्कुमित्रेचमित्रेचापिनविश्वसेत् ॥
कदाचित्कुपितोमित्रोसर्वगुह्यंप्रकाशयेत् ॥६॥

टीका--कुमित्रपर विश्वासतो किसी प्रकारसे नहीं करना चाहिये और सुमित्रपरभी विश्वास न रखें इसका कारण कि, कदाचित् मित्र रुष्ट होयतो सब गुप्त बातों को प्रसिद्ध करदे ॥ ६ ॥

मनसाचिंतितंकार्यवाचानैवप्रकाशयेत् ॥
मंत्रेणरक्षयेन्द्रुदंकार्यचापिनियोजयेत् ॥ ७ ॥

टीका--मनसे सोचे हुये कामका प्रकाश वचनसे न करे, किंतु मंत्रसे उसकी रक्षा करे और गुप्तही उसकार्य को काममें भी लावै ॥ ७ ॥

कष्टंचखलुमूर्खत्वंकष्टंचखलुयौवनम् ॥
कष्टात्कष्टतरंचैवपरगेहनिवासनिम् ॥ ८ ॥

टीका--मूर्खता दुःख देती है, और युवापनभी दुःख देता है, परंतु दूसरे के घृहका वास तो बहुतही दुःख दायक होता है ॥ ८ ॥

शैलेशलेनमाणिक्यंमौक्तिकंनगजेगजे ॥
साधवोनहिसर्वत्रचंदनंनवनेवने ॥ ९ ॥

टीका--सब पर्वतोंपर माणिक्य नहीं होता और मोती

चाणक्यनीतिदर्पणे ।

सब हाथियोंमें नहीं मिलता, साधुलोग सबस्थानोंमें
नहीं मिलते, और सब बनमें चंद्रन नहीं
होता ॥ ६ ॥

पुत्राश्वविविधैःशीलैर्नियोज्याःसततंवुधैः ॥
नीतिज्ञाःशीलसंपन्नाभवंतिकुलपूजिताः॥१०॥

टीका—बुद्धिमान् लोग लड़कोंको नाना भाँतिकी
सुशीलतामें लगावे; इसकारण कि, नीतिके जानने
वाके यदि शीलवान् होय तो कुलमें पूजित होते हैं॥१०॥

मातारिपुःपिताशत्रुर्बालोयाक्ष्यानपाठ्यते ॥
सभामध्येनशोभतेहंसमध्येवकोयथा ॥ ११ ॥

टीका—वह माता रात्रु और पिता बैरीहैं जिसने अपने
बालक को न पढाया. इस कारण कि सभाके बीच वे
ऐसे शोभते, जैसे हँसाओंके बीच बकुल। ॥ ११ ॥

लालनाद्वहवोदोषास्ताडनाद्वहवोगुणाः ॥
तस्मात्पुत्रंचशिष्यंचताडयेन्नतुलालयेत्॥१२॥

टीका—दुलारनेसे बहुत दोष होते हैं. और दंड देनेसे
बहुत गुण. इस हेतु पुत्र और शिष्यको दण्ड देना
उचित है लालना नहीं ॥ १२ ॥

श्लोकेनवातदर्द्धेनतदद्विक्षरेणच ॥
अवंध्यंदिवसंकुर्याद्वानाध्ययनकर्मभिः ॥१३॥

अध्यायः २

टीका—श्लोक वा श्लोकके अधिको अथवा अधिमेसे अधिको प्रतिदिन पढना उचित है। इस कारण कि दान, अध्यन आदि कर्मसे दिनको सार्थक करना चाहिये ॥ १३ ॥

**कांतावियोगःस्वजनापमानोरणस्यशेषःकुनृ-
पस्यसेवा ॥ दरिद्रभावोविषमासंभाचविनाग्नि-
मेतेप्रदहन्तिकायम् ॥ १४ ॥**

टीका—स्त्रीका विरह, अरने जनोंसे अनादर, युद्ध करके बचा शत्रु, कुतिसत राजाकी सेवा, दरिद्रता और अविवेकियोंकी सभा ये बिना आगही शरीरको जलाते हैं ॥ १४ ॥

**नदीतीरेचयेवृक्षाःपरगेहेषुकामिनि ॥
मंत्रिहीनाश्वराजानःशीघ्रंनश्यन्त्यसंशयम् ॥ १५ ॥**

टीका—नदीके तीरके वृक्ष, दूसरे के गृहमें जानेवाली स्त्री, मंत्रीरहित राजा, निश्चय है कि शीघ्रही नष्ट हो जाते हैं ॥ १५ ॥

**बलंविद्याचविप्राणांराज्ञांसैन्यंबलंतथा ॥
बलंवित्तंचवैश्यानांशूद्राणांचकनिष्ठिका ॥ १६ ॥**

टीका—ब्राह्मणोंका बल विद्या है, वैसेही राजाका बल सेना, वैश्योंका बल धन और शूद्रोंका बल सेवा ॥ १६ ॥

चाणक्यनीतिदर्शणे ।

निर्धनं पुरुषं वेश्या प्रजा भग्नं नृपं त्थजेत् ॥
खगावीति फलं वृक्षं भुक्ता च अभ्यागता गृहम् ॥७॥

टीका—वेश्या निर्धन परुषको, प्रजा शक्तिहीन राजाको, पक्षी फलरहित वृक्षको, और अभ्यागत भोजन करके घरको छोड़ देते हैं ॥ ७ ॥

गृहत्वां दक्षिणां विप्रा स्त्यजान्ति यजमानकं ॥
प्राप्तविद्या गुरुं शिष्यादग्धारण्यं मृगस्तथा ॥८॥

टीका—ब्राह्मण दक्षिणा लेकर यजमानको ल्याग देते हैं, शिष्य विद्या प्राप्त होजानेपर गुरुको, वैसेही जलेहुये बनको मृग छोड़देते हैं ॥ ८ ॥

दुराचारी दुराहृष्टिर्दुरावासी च दुर्जनः ॥
यन्मैत्री क्रियते पुंसा स तुशीघ्रं विनश्यति ॥९॥

टीका—जिसका आचरण बुरा है, जिसकी दृष्टि पापमें रहती है, बुरेस्थानमें बसनेवाला और दुर्जन इन परुषोंकी मैत्री जिसके साथ की जाती है वह नर शीघ्रही नष्ट होजाता है ॥ ९ ॥

समानेशो भते प्रीतीरा ज्ञिसेवा च शोभते ॥
वाणिज्यं व्यवहारे षुस्त्री दिव्या शोभते गृहे ॥१०॥

टीका—समानजनमें प्रीति शोभती है, और सेवा राजाकी शोभती है, व्यवहारोंमें बनियाई, और

घरमें दिव्य सुंदर स्त्री शोभती है ॥ २० ॥

इति द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

अथ तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

कस्यदोषः कुलेनास्तिंव्याधिनाकेनपीडिताः ॥
व्यसनंकेननप्राप्तंकस्यसौख्यंनिरन्तरम् ॥ १ ॥

टीका—किसके कुलमें दोष नहीं है, व्याधीने किसे पीड़ित न किया, किसको दुःख न मिला, किसको सदा सुखही रहा ॥ १ ॥

आचारः कुलभार्व्यातिदेशमार्व्यातिभाषणम् ॥
संभ्रमः स्नेहमार्व्यातिविपुरार्व्यातिभोजनम् ॥ २ ॥

टीका—आचार कुलको बतलाता है, बोली देशको जनाती है, आदर प्रीतिका प्रकाश करता है, शरीर भोजनको जताता है ॥ २ ॥

सुकुलेयोजयेत्कन्यापुत्रंविद्यासुयोजयेत् ॥
व्यसनेयोजयेच्छन्नुमिष्टंधर्मेणायोजयेत् ॥ ३ ॥

टीका—कन्याको श्रेष्ठ कुलवाले को देना चाहिये, पुत्रको विद्यामें लगाना चाहिये शत्रुको दुःख पहुँचाना उचित है और मित्रको धर्मका उपदेश करना चाहिये ॥ ३ ॥

दुर्जनस्यचसर्पस्यवर्सपोनदुर्जनः ॥
सपोदिशतिकालेतुदुर्जनस्तुपदेपदे ॥ ४ ॥

टीका—दुर्जन और सर्प इनमें सांप अच्छा दुर्जन नहीं इस कारण कि सांप काल आनेपर काटता है दुर्जन पदपदमें ॥ ४ ॥

एतदर्थकुलीनानांनृपाःकुर्वतिसंग्रहम् ॥
आदिमध्यावसानेषुनत्यजन्तिचतेनृपम् ॥५॥

टीका—राजालोग कुलीनोंका संग्रह इस निमित्त करते हैं कि, वे आदि अर्थात् उज्ज्ञाति, मध्य अर्थात् साधारण और अंत अर्थात् विपर्तिमें राजाको नहीं छोड़ते ॥ ५ ॥

प्रलयेभिन्नमर्यादाभवन्तिकिलसागरः ॥
सागरभेदमिच्छन्तिप्रलयेऽपिनसाधवः ॥६॥

टीका—समुद्र प्रलयके समयमें अपनी मर्यादाको छोड़ देते हैं और सागर भेदकी इच्छाभी रखते हैं परन्तु साधुलोग प्रलय होनेपरभी अपनी मर्यादाको नहीं छोड़ते ॥ ६ ॥

मूर्खस्तुपरिहर्त्वःप्रत्यक्षोद्विपदःपशुः ॥
भिद्यतेवाक्यशल्यनअद्व्याकंटकंयथा ॥ ७ ॥

टीका—मूर्खको दूर करना उचित है, इस कारण

कि, देखनेमें वह मनुष्य है; परन्तु यथार्थ देखेतो दो पांवकं पशु है और वाक्यरूप काँटेको बेधता है जैसे अन्धे को काँटा ॥ ७ ॥

रूपयौवनसम्पन्नाविशालकुलसम्भवाः ॥
विद्याहीनानशोभन्तेनिर्गीधाइवकिंशुकाः॥८॥

टीका—सुंदरता, तरुणता और छडे कुलमें जन्म इनके रहतेभी विद्याहीन पुरुष बिनागन्ध पलाशदाक के फूलके समान नहीं शोभते ॥ ८ ॥

कोकिलानांस्वरोरूपंस्त्रीणांरूपंपतिव्रतम् ॥
विद्यारूपंकुरूपाणांक्षमारूपंतपस्विनाम् ॥९॥

टीका—कोकिलोंकी शोभा स्वर है, स्त्रियोंकी शोभा प्रातिवृत, कुरूपोंकी शोभा विद्या है, तपस्वियोंकी शोभा क्षमा है ॥ ९ ॥

त्यजेदेकंकुलस्यार्थेग्रामस्यार्थेकुलंत्यजेत् ॥
ग्रामंजनपदस्यार्थेग्रात्मार्थेपृथिवीत्यजेत् ॥१०॥

टीका—कुलके निमित्त एकको छोड़देना चाहिये, ग्राम के हेतु कुलका त्याग उचित है, देशके अर्थ ग्रामका और अपने अर्थ पृथिवीका अर्थात् सबका त्यागही उचित है ॥ १० ॥

उद्योगेनास्तिदारिद्र्यंजपतोनास्तिपातकम् ॥
मौनेनकलहोनास्तिनास्तिजागारितेभयम् ॥११॥

टीका—उपाय करनेपर दरिद्रता नहीं रहती, जपने वालेको पाप नहीं रहता, मौन होनेसे कलह नहीं होता औ जागेनवालेके निकट भय नहीं आता॥११॥

अतिरुपेणैसीताआतिगर्वेणरावणः ॥
अतिदानाद्विर्वद्वोद्धतिसर्वत्रवर्जयेत्॥१२॥

टीका—अतिसुंदरताके कारण सीता हरी गई, अति गर्वसे रावण मारा गया, बहुत दान देकर बलिको बंधना पड़ा; इस हेतु अतिको सब स्थल में छोड़ देना चाहिये ॥ १२ ॥

कोहिभारःसमर्थनांकिंदुरंठ्यवसायिनम् ॥
कोविदेशःसुविद्यानांकःप्रियःप्रियवादिनम् ॥३

टीका—समर्थको कौन वस्तु भारी है, काम में तत्पर रहने वाले को क्या दूर है गुन्दर विद्यावालोंको कौन विदेश है, प्रियवादियोंको अप्रिय कौन है ॥ ३ ॥

एकेनापिसुवृक्षेणपुष्पितेनसुगन्धिना ॥
वासितंतद्वनंसर्वसुपुत्रेणकुलंयथा ॥ १४ ॥

टीका—एकभी अच्छे वृक्षसे जिसमें सुन्दर फूल और गन्ध है ऐसे सब बन सुवासित होजाता है, जैसे सुपुत्रसे कुल ॥ १४ ॥

एकेनशुष्कवृक्षेणदद्यमानेनवहिना ॥
दद्यतेतद्वनंसर्वकुपुत्रेणकुलंयथा ॥ १५ ॥

टीका—आगसे जलतेहुये एकही सूखे वृक्षसे वह सब वन ऐसे जलजाता है जैसे कुपुत्रसे कुल ॥१५॥

एकेनापिसुपुत्रेणविद्यायुक्तनेसाधुना ॥
आलहादितंकुलंसर्वयथाचंद्रेणशर्वरो ॥ १६ ॥

टीका—विद्यायुक्त भला एकभी मुपुत्रसे सब कुल ऐसे आनंदित होजाता है. जैसे चंद्रमासे रात्रि ॥१६॥

किंजातैर्बहुभिःपुत्रैःशोकसंतापकारकैः ॥
वरमेकःकुलालंबीष्टविश्राम्यतेकुलम् ॥ १७ ॥

टीका—शोक संताप करनेवाले उत्पन्न बहुपुत्रोंसे क्या ? कुलको सहारा देनेवाला एकही पुत्र श्रेष्ठ है. जिसमें कुल विश्राम पाता है ॥ १७ ॥

लालयेत्पञ्चवर्षाणिदशवर्षाणिताडयेत् ॥
प्राप्तेतुषोऽशेषोपुत्रेमित्रत्वमाचरेत् ॥ १८ ॥

टीका—पुत्रको पांच बरसतक दुलारे, उपरांत दश वर्ष पर्यंत ताडन करें. सोलवें वर्ष की प्राप्ति होने पर पुत्रमें मित्रसमान आचरण करें ॥ १८ ॥

उपसर्गेऽन्यचक्रेचदुर्भिक्षेचभयावहे ॥
असाधुजनसंपर्केयःपलातिसर्जीवति ॥ १९ ॥

टीका—उपद्रव उठनेपर, शत्रुके आक्रमण करनेपर, भयानक अकाल पड़ने पर और खलजनके संग होने

चाणक्यनातदपण ।

पर जो भागता है वह जीवता रहता है ॥ १९ ॥

धर्मार्थकाममोक्षेषुयस्यकोऽपिनविद्यते ।;

जन्मजन्मनिमत्पेषुमरणंतस्यकेवलम् ॥ २० ॥

टीका—धर्म, अर्थ काम और मोक्ष इनमें से जिसको कोई भी न भया उसको मनुष्योंमें जन्म होने का फल केवल मरण ही हुआ ॥ २० ॥

मूर्खायन्नपूज्यंतेधान्यंयत्रसुसंचितम् ॥

दाम्पत्यकलहेनास्तितत्रश्रीःस्वयमागता ॥ २१ ॥

टीका—जहाँ मूर्ख नहीं पूजे जाते, जहाँ अन्न संचित रहता है और जहाँ स्त्रीप्रहृष्टमें कलह नहीं होता वहाँ आपही लक्ष्मी विराजमान रहती है ॥ २१ ॥

॥ इति तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः ४

आयुःकर्मचवित्तचविद्यानिधनमेवच ॥

पंचैतानिहिसृज्यन्तेगर्भस्थस्यैवदेहिनः ॥ १ ॥

टीका—यह निश्चय है कि, आयुर्दाय, कर्म, धन, विद्या और मरण ये पांचों जब जीव गर्भहीमें रहता है तबही लिखदिये जाते हैं ॥ १ ॥

साधुन्यस्तेनिवर्तन्तेपुत्रामित्राणिबांधवाः ॥

येचतौःसहगंतारस्तद्वर्त्तिसुकृतंकुलम् ॥ २ ॥

टीका—पुत्र, मित्र, बन्धु ये साधु जनोंसे निवृत्त होजाते हैं और जो उनका संग करते हैं उनके पुण्य से उनका कुल सुकृति होजाता है ॥ २ ॥

**दर्शनध्यानसंस्पर्शमर्त्सीकूर्मीचपक्षिणी ॥
शिशुंपालयतेनित्पंतथासज्जनसंगतिः ॥ ३ ॥**

टीका—मछली कब्ज्हुई और पक्षी ये दर्शन ध्यान और स्पर्शसे जैसे बच्चोंको सर्वदा पालतीं हैं वैसेही सज्जनोंकी संगति ॥ ३ ॥

**यावत् स्वस्थो ह्ययं देहो यावन्मृत्युश्वदूरतः ॥
तावदात्महितं कुर्यात्प्राणां तेकिं करिष्यति ॥ ४ ॥**

टीका—जबलों देह निरोग है और तष्ठलग मृत्यु दूर है तत्पर्यंत अपना हित पुण्यादि करना उचित्त है. प्राणके अंत होजानेपर कोई क्या करेगा ॥ ४ ॥

**कामधेनुगुणाविद्याह्यकालोफलदायिनी ॥
प्रवासेमातृसदृशीविद्यागुप्तं धनं स्मृतम् ॥ ५ ॥**

टीका—विद्यामें कामधेनुके समान गुण हैं इसकारण कि अकालमेंभी फल देती हैं. विदेशमें माताके समान हैं विद्याको गुप्त धन कहते हैं ॥ ५ ॥

**एकोऽपिगुणवान्पुत्रोनिर्गुणैश्वर्तैर्वरः ॥
एकश्वद्रस्तमोहंतिनचताराः सहस्रशः ॥ ६ ॥**

टीका—एकभी गुणी पुत्र श्रेष्ठ है सो सैकड़ों गुण-
रहितोंसे क्या ? एकही चन्द्र अन्धकारको नष्ट कर
देता है, सहस्र तोरे नहीं ॥ ६ ॥

**मूर्खश्विरायुर्जातोऽपितस्माज्जातमृतोवरः ॥
मृतःसचाल्पदुःखाययावज्जीवंजडादहेत् ॥७॥**

टीका—मूर्ख जातक चिरजीवीभी हो उससे उत्पन्न
होतेहीं जो मरगया वह श्रेष्ठ है. इस कारण कि मरा
थोड़ेहीं दुःखका कारण होता है जड़ जबलों जीता है
तबलों दाहता रहता है ॥ ७ ॥

**कुग्रामवासः कुलहीनसेवाकुभोजनंकोधमुखी
चभार्या ॥ पुत्रश्वमूर्खोविधवाचकन्याविनाश्चि
नाषट् प्रदहंतिकायम् ॥ ८ ॥**

टीका—कुग्राममें वास, नीच कुलकी सेवा, कुभोजन,
कलही स्त्री, मूर्ख पुत्र, विधवा कन्या ये छः बिना
आगही शरीर को जलाते हैं ॥ ८ ॥

**किंतयाक्रियतेधेन्वाणनदोग्धीनगुर्विशी ॥
कोऽर्थःपुत्रेणजातेनयोनविद्वान्नभक्तिमान् ॥९॥**

टीका—उसगायसे क्या लाभ है जो न दूध देवे,
न गाभिन होवे, और ऐसे पुत्र हुएसे क्या लाभ
जो न विद्वान् स्या न भक्तिमान् ॥ ९ ॥

संसारतापदग्धानात्रयोविश्रांतिहेतवः ॥
अपत्यंचकलत्रंचसतांसंगतिरेवच ॥ १० ॥

टीका—संसारके तापसे जलतेहुये पुरुषोंके विश्रामके हेतु तीन हैं, लड़का, स्त्री और सज्जनोंकी संगति ॥ १० ॥

सकृज्जल्पन्तिराजानःसकृज्जल्पन्तिपंडिताः ॥
सकृत्कन्याःप्रदीयन्तेन्नीण्येतानिसकृत्सकृत् ॥ ११ ॥

टीका—राजालोग एकहीबार आज्ञा देते हैं, पंडित लोग एकहीबार बोलते हैं, कन्याका दान एकहीबार होता है ये तीनों बात एकबारही होती हैं ॥ ११ ॥

एकोकिनातपोद्वाभ्यांपठनंगायनंत्रिभिः ॥
चतुर्भिर्गमनंक्षेत्रंपंचभिर्बहुभीरणम् ॥ १२ ॥

टीका—अकेलेमें तप, दोसे पढ़ना, तीनसे गाना, चारसे पन्थमें चलना, पांचसे खेती और बहुतों से युद्ध भलीभांतिसे बनते हैं ॥ १२ ॥

साभार्यायाशुचिर्दक्षासाभार्यायापतिव्रता ॥
साभार्यपतिप्रीतासाभार्यासत्यवादिनी ॥ १३ ॥

टीका—वही भार्या है, जो पवित्र और चतुर वही भार्या है; जो पतिव्रता है, वही भार्या है; जिसपर पतीकी प्रीति है, वही भार्या है; जो सत्य बोलती है अर्थात् दान मान पोषण पालनके धोरण है ॥ १३ ॥

अपत्रस्यगृहंशून्यंदिशःशून्यास्त्ववाधवः ॥
मूर्खस्यहृदयंशून्यंसर्वशून्यादरिद्रिता ॥ १४ ॥

टीका—निपुत्रीका घर सूना है, बन्धुरहित दिशा
शून्य है, मूर्खका हृदय शून्य है और सर्वशून्य
दारिद्रिता है ॥ १४ ॥

अनन्याल्मेविषंशास्त्रमजीर्णेभोजनंविषम् ॥
दरिद्रस्यविषंगोष्ठीवृद्धस्यतरुणीविषम् ॥ १५ ॥

टीका—बिनाभ्याससे शास्त्र विष होजाता है, बिना
पचे भोजन विष होजाता है, दारिद्र को गोष्ठी
विष और वृद्धको युवती विष जानपड़ती है ॥ १५ ॥

त्यजेष्वर्मदयाहीनंविद्याहीनंगुरुत्यजेत् ॥
त्यजेत्क्रोधमुखीभायांनिस्नेहान्वांधवात्यजेत् ॥ १६ ॥

टीका—दयारहित धर्मको छोड़देना चाहिये, विद्या
विहीन गुरुका त्याग उचित है, जिसके सुंहसे क्रोध
प्रगट होता होय ऐसी भायाँको अलग करना चाहिये
और बिनाप्रीति बांधनोंका त्याग विहित है ॥ १६ ॥

अध्वाजरामनुष्याणांवाजिनांबन्धनंजरा ॥
अमैथुनंजराखीणांवस्त्राणामातपोजरा ॥ १७ ॥

टीका—मनुष्योंको बुढ़ापनपथ है, घोड़ोंको
बांधरखना वृद्धता है, स्त्रियोंको अमैथुन बुढ़ापा है

और वस्त्रोंको घाम बूझता है ॥ १७ ॥

कःकालःकानिमित्राणिकौदेशःकौव्ययागमौ
कस्याहंकाचमेशक्तिरितिचिंत्यंमुहुर्मुहुः॥ १८॥

टीका—किसकालमें क्या करना चाहिये, मित्र कौन है, देश कौन है, लाभव्यय क्या है, किसका मैं हूँ, मम्भमें क्या शक्ति है ये सब बार बार विचारना योग्य है ॥ १८ ॥

अग्निर्देवोद्दिजातीनांमुनीनांहृदिदैवतम् ॥
प्रतिमास्वल्पबुद्धीनांसर्वत्रसमदर्शिनां ॥ १९ ॥

टीका—ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, उनका देवता आग्नि है. मुनियों के हृदयमें देवता रहता है. अल्पबुद्धियों के मूर्ति और समदर्शियोंको सबस्थानमें देवता है॥ १९ ॥

इति चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

—————+—————

अथ पंचमोऽध्यायः ५

पतिरेवगुरुःस्त्रीणांसर्वस्याभ्यागतोगुरुः ॥
गुरुग्निर्द्विजातीनांवर्णनांब्राह्मणोगुरुः ॥ १ ॥

टीका—स्त्री का गुरु पतिही है, अभ्यागत सबका गुरु है, ब्राह्मण, क्षत्रीय, वैश्य, इनका गुरु अग्नि है

और चारों वर्णों में गुरु ब्राह्मण है ॥ १ ॥

यथाचतुर्भिः कनकं परीक्ष्य ते निघर्षण छेदनता
पताढनैः ॥ तथा चतुर्भिः पुरुषः परीक्ष्य ते त्यगेन
शीलेन गुणेन कर्मणः ॥ २ ॥

टीका—घिसना, काटना, तपाना, पीटना इन चार प्रकारों से जैसे सोनेका परीक्षा की जाती है, वैसे ही दान, शील, गुण और आचार इन चारों प्रकार से पुरुषकी भी परीक्षा की जाती है ॥ २ ॥

तावद्येषु भेतव्यं यावद्यमनागतम् ॥
आगतं तु भयं दृष्ट्वा प्रहर्तव्यमशंकया ॥ ३ ॥

टीका—तब तक ही भयोंसे डरना चाहिये जब तक भय नहीं आया, और आये हुये भय को देखकर प्रहार करना उचित है ॥ ३ ॥

एकोदरसमुद्भूता एकनक्षत्रजातकाः ॥
न भवन्ति समाः शीलैर्यथा वदरिकंटकाः ॥ ४ ॥

टीका—एक ही गर्भ से उत्पन्न और एक ही नक्षत्र जायमान शील से समान नहीं होते जैसे वे और उसके काटे ॥ ४ ॥

निःस्पृहो न अधिकारी स्यान्नाकामो मंडनप्रियः ॥
न विदग्धः प्रियं द्रूपात् स्पष्टवक्तानवंचकः ॥ ५ ॥

टीका--जिसको किसी विषयकी वांछा न होगी वह किसी विषयका अधिकार नहीं होगा, जो कामी न होगा वह शरीर की शोभा करनेवाली वस्तुओंमें प्रीति नहीं रखेगा; जो चतुर न होगा वह प्रिय नहीं बोल सकेगा और स्पष्ट कहनेवाला छली नहीं होगा ॥ ५ ॥

मूर्खाणां पंडिताद्वेष्याऽर्धनानां महाधनाः ॥
दुर्भगाणां च सुभगाः कुलटानां कुलां गनाः ॥ ६ ॥

टीका--मूर्ख पंडितोंसे, दरिद्री धनियोंसे, व्यस्तिचारिणी कुलस्त्रियोंसे, और विधवा सुहागिनियों से बुरा मानती हैं ॥ ६ ॥

आलस्योपहताविद्यापरहस्तेगतं धनम् ॥
अल्पवीजं हतं क्षेत्रं हतं सैन्यमनायकम् ॥ ७ ॥

टीका—आलस्यसे विद्या नष्ट होजाती है, दूसरेके हाथमें जानेसे धन निर्धक होजाता है, बीजकी न्यूनतासे खेत हत होजाता है, सेनापतिके बिना सेना नष्ट होजाती हैं ॥ ७ ॥

अभ्यासाद्वार्यते विद्या कुलं शीलेन धार्यते ॥
गुणेन ज्ञायते त्वार्यः कोपो न ब्रेण गम्यते ॥ ८ ॥

टीका—अभ्याससे विद्या, सुशीलतासे कुल, गुणसे भला मनुष्य और नेत्रसे कौप ज्ञात होता है ॥ ८ ॥

वित्तेनरक्षयते धर्मो विद्यायोगैनरक्षयते ॥
मृदुनारक्षयते भूपः सत्त्विषारक्षयते गृहम् ॥ ९ ॥

टीका—धनसे धर्मकी रक्षा होती है, यम नियम आदि योग से ज्ञान रक्षित रेता है, मृदुतासे राजाकी रक्षा होती है, भली स्त्रीसे वरकी रक्षा होती है ॥ ९ ॥

अन्यथा विद्यपाणिडत्यंशास्त्रमाचारमन्यथा ॥
अन्यथा यद्वद्दन्तरांतलोकाः क्लिद्यन्ति चान्यथा

टीका—वेदकी पांडित्यको व्यर्थ प्रकाश करनेवाला, शास्त्र और उसके आचारके विषयमें व्यर्थ विवाद करनेवाला, शांत पुरुषोंको अन्यथा कहनेवाला, ये लोग व्यर्थही क्षेत्र उठाते हैं ॥ १० ॥

दारिद्र्यनाशनं दानं शीलं दुर्गतिनाशनं ॥
अज्ञाननाशिनी प्रज्ञाभावनाभयनाशिनी ॥ ११ ॥

टीका—दान दरिद्रताका नाश करता है सुशीलता दुर्गतिका, बुद्धि अज्ञान भक्ति भयका नाश करती है, ॥ ११ ॥

नास्तिकामसमो व्याधिर्नास्तिमोहसमोरिपुः ॥
नास्तिकोपसमो वह्निर्नास्तिज्ञानात्परं सुखम् ॥ १२ ॥

टीका—कामके समान दूसरी व्याधि नहीं है, अज्ञान के समान दूसरा वैरी नहीं है, कोधके तुल्य दूसरी

आग नहीं है, ज्ञानसे परे सुख नहीं है ॥ १२ ॥

जन्ममृत्युहियात्पेकोभुनक्येकःशुभाशुभम् ॥
नरकेषुपत्त्येकएकोयातिपराङ्गतिम् ॥ १३ ॥

टीका—यह निश्चय है कि एकही पुरुष जन्ममरण पाता है सुखदुःख एकही भोगता है एकही नरकोंमें पड़ता है और एकही मोक्ष पाता है, अर्थात् इन कामोंमें कोई किसीकी सहायता नहीं करसक्ता ॥ १३ ॥

तृणंब्रह्मविदःस्वर्गंतृणंसूरस्यजीवितं ॥
जिताक्षस्यतृणंनारीनिस्पृहस्यतृणंजगत् ॥ १४ ॥

टीका—ब्रह्मज्ञानीको स्वर्ग तृण है, शूरकों जीवन तृणहै, जिसने इन्द्रियोंको वश किया उसे स्त्री तृणके तुल्य जानपड़ती है, निस्पृहकों जगत् तृणहै ॥ १४ ॥

विद्यामित्रंप्रवासेषुभार्यामित्रंगृहेषु च ॥
व्याधितस्यौषधंमित्रंधर्मोमित्रंमृतस्य च ॥ १५ ॥

टीका—विदेशोंमें विद्या मित्र होती है, गृहमें भार्या मित्र है, रोगीका मित्र औषध है और मरे का मित्र धर्म है ॥ १५ ॥

वृथावृष्टिःसमुद्रेषुवृथातृप्तेषुभोजनम् ॥
वृथादानंधनाल्येषुवृथादीपोदिवापि च ॥ १६ ॥

टीका—समुद्रोंमें वर्षा वृथा है, और भोजनसे तृप्तको

भोजन निरर्थक है, धनीको धन देना व्यर्थ है और
दिनमें दीप व्यर्थ है ॥ १६ ॥

नास्तिमेघसमंतोयंनास्तिचात्मसमंबलम् ॥

नास्तिचक्षुःसमंतेजोनास्तिधान्यसमंप्रियम् ॥७॥

टीका—मैघके जलके समान दूसरा जल नहीं
अपने बल समान दूसरे का बल नहीं इस कारण कि
समय पर काम आता है, नेत्रके तुल्य दूसरा प्रकाश
करनेवाला नहीं है और अन्नके शब्दश दूसरा प्रिय
पदार्थ नहीं है ॥ ७ ॥

अधनाधनामिञ्छन्तिवाच्चैवचतुष्पदाः ॥

मानवाःस्वर्गमिञ्छन्तिमोक्षमिञ्छन्तिदेवताः ॥८॥

टीका—धनहीन धन चाहते हैं, और पशु बचन,
मनुष्य स्वर्ग चाहते हैं, और देवता मुक्तिकी इच्छा
रखते हैं ॥ ८ ॥

सत्येनधार्यते पृथ्वीसत्येन तपते रविः ॥

सत्येन वातिवायुश्च सर्वं सत्येन प्रतिष्ठितम् ॥९॥

टीका—सत्यसे पृथ्वी स्थिर है, और सत्यहींसे सूर्य
तपते हैं, सत्यहींसे वायु बहती है, सब सत्यहींसे
स्थिर है ॥ ९ ॥

चलालक्ष्मीश्चलाप्राणाश्चलेजीवितमंदिरे ॥

चलाचलेच संसारे धर्मएको हिनिश्चलः ॥१०॥

टीका—लक्ष्मी नित्य नहीं है, प्राण, जीवन और घर ये सब स्थिर नहीं हैं, निश्चय है कि इस चराचर संसारमें केवल धर्मही निश्चल है ॥ २० ॥

नराणांनापितोधूर्तःपक्षिणांचैववायसः ॥
चतुष्पदांशृगालस्तुखीणांधूर्तचिमालिनी ॥ २१ ॥

टीका—पुरुषोंमें नापित, और पक्षियोंमें कौवा बंचक होता है, पशुवोंमें सियार बंचक होता है और स्त्रियोंमें मालिन धूर्त होती है ॥ २१ ॥

जनिताचोपनेताचयस्तुविद्यांप्रयच्छति ॥
अन्नदातांभयन्नातापंचैतेपितरःस्मृताः ॥ २२ ॥

टीका—जन्मानेवाला, यज्ञोपवीत आदि संस्कार करानेवाला, विद्या देनेवाला है, अन्नदेनेवाला, भय से बचानेवाला ये पांच पिता गिनेजाते हैं ॥ २२ ॥

राजपत्रीगुरोःपत्रीमित्रपत्रीतथैव च ॥
पत्रीमातास्वमाताचपंचैतामातरःस्मृताः ॥ २३ ॥

टीका—राजाकी भार्या, गुरुकी स्त्री, वैसेही मित्र की पत्नी सास और अपनी जननी (माता) इन पांचों को माता कहते हैं ॥ २३ ॥

अथ षष्ठमोऽध्यायः ६

श्रुत्वाधर्मविजानातिश्रुत्वात्यजतिदुर्मतिम् ॥
श्रुत्वाज्ञानमवाप्नोतिश्रुत्वामोक्षमवाप्नुयात् ॥ १ ॥

टीका—मनुष्य शास्त्रको सुन कर धर्मको जानता है दुर्बुद्धिको छोड़ता है, ज्ञान पाता है मोक्ष पाता है ॥ १ ॥

काकःपक्षिषुचंडालःपशूनांचैवकुक्कुरः ॥
पापोमुनीनांचांडालःसर्वेषांचैवनिंदकः ॥ २ ॥

टीका—पक्षियोंमें कौवा, और पशुओंमें कृकुर, चांडाल होता है, मुनियोंमें चांडाल पाप है, और सबमें चांडाल निन्दक है ॥ २ ॥

भस्मनाशुद्धयतेकांस्यंताम्रमम्लैनशुद्धयति ॥
रजसाशुद्धयतेनारीनदीवेगेनशुद्धययति ॥ ३ ॥

टीका—कांसेका पात्र राखसे, तांबेका मल खटाईसे, स्त्री रजस्वला होनेपर और नदी धाराके वेगसे पवित्र होती है ॥ ३ ॥

भ्रमन्‌संपूज्यतेराजा भ्रमन्‌संपूज्यतेद्विजः ॥
भ्रमन्‌संपूज्यतेयोगीस्त्री भ्रमन्तीविनश्यति ॥ ४ ॥

टीका—भ्रमण करने वाले राजा, ब्राह्मण, योगी पूजित होते हैं परंतु स्त्री धूमनेसे भ्रष्ट होजाती है ॥ ४ ॥

यस्यार्थस्तस्यमित्राणियस्यार्थस्तस्यबान्धवाः
यस्यार्थाः सपुमाँलोके यस्यार्थाः सचपंडितः ॥५॥

टीका—जिसके धन है, उसीका मित्र, और उसीके बांधव, होते हैं, और वही पुरुष गिना जाता है, और वही पंडित कहाता है ॥ ५ ॥

तादृशीजायतेबुद्धिर्यवसायोपितादृशः ॥
सहायास्तादृशाएवयादृशीभवितव्यता ॥ ६ ॥

टीका—वैसेही बुद्धि और वैसाही उपाय होता है और वैसेही सहायक मिलते हैं जैसा होनहार है ॥ ६ ॥

कालः पचति भूतानि कालः संहरते प्रजाः ॥
कालः सुप्तेषु जागति कालो हिंदुरतिक्रमः ॥ ७ ॥

टीका—काल सब प्राणियोंको खाजाता है और कालही सब प्रजाका नाश करता है. सब पदार्थके लिये होजाने पर काल जागता रहता है कालको कोई नहीं टाल सकता ॥ ७ ॥

न पश्यति च जन्मान्धः कामान्धो नैव पश्यति ॥
मदोन्मत्तान पश्यन्ति अर्थो दोषं न पश्यति ॥ ८ ॥

टीका—जन्मका अन्धा नहीं देखता, काम से जो अन्धा होरहा है उसको सूझता नहीं, मदोन्मत्त किसी को देखता नहीं और अर्थों दोषको नहीं देखता ॥ ८ ॥

स्वयंकर्मकरोत्यात्मास्वयंतत्कलमश्चुते ॥
स्वयंक्लमातिसंसारेस्वयंतस्माद्विमुच्यते ॥ ९ ॥

टीका—जीव आपही कर्म करता है और उसका फलभी आपही भोगता है, आपही संसार में अमता है और आपही उससे मुक्त भी होता है ॥ ९ ॥

राजाराष्ट्रकृतंपापंराज्ञःपापंपुरोहितः ॥
भर्ताच्छ्रीकृतंपापंशिष्यपापंगुरुस्तथा ॥ १० ॥

टीका—अपने राज्यमें किये हुवे पापको राजा, और राजा के पापको पुरोहित भोगता है, श्रीकृतपापको स्वामी भोगता है, वैसेही शिष्यके पापको गुरु ॥ १० ॥

ऋणकर्तापिताशत्रुमाताचृद्यभिचारिणी ॥
भार्यारूपवतीशत्रुःपुत्रशत्रुरपण्डितः ॥ ११ ॥

टीका—ऋण करनेवाला पिता शत्रु है, व्यभिचारिणी माता और सुन्दरी श्री शत्रु है, और मूर्ख पुत्र वैरी है ॥ ११ ॥

लुब्धमर्थेनगृह्णीयात्स्तत्ब्यमंजलिकर्मणा ॥
मूर्खंछंदानुवृत्याचयर्थार्थेनपण्डितम् ॥ १२ ॥

टीका—जो भीको धनसे, अहंकारीको हाथ जोड़नेसे, मूर्खको उसके अनुसार वर्तनेसे और पंडितको संचार्द्वारा से, वश करना चाहिये ॥ १२ ॥

वरंनराज्यं नकुराजराज्यं वरंनमित्रं नकुमित्रं
मित्रं । वरंनशिष्यो नकुशिष्यशिष्यो वरंनदारा
नकुदार दाराः ॥ १३ ॥

टीका—राज्य न रहना यह अच्छा, परन्तु कुराजाका
राज्य होना यह अच्छा नहीं, मित्रका न होना यह
अच्छा, परंतु कुमित्रको मित्र करना अच्छा नहीं,
शिष्य नहो यह अच्छा परंतु निंदित शिष्य कहलावे
यह अच्छा नहीं, भार्या न रहे यह अच्छा परं कुभार्या
का भार्या होना अच्छा नहीं ॥ १३ ॥

कुराजराज्येनकुतःप्रजासुखं
कुमित्रमित्रेणकुतोऽभिनिर्वतिः ॥
कुदारदारैश्चकुतोगृहेरतिः
कुशिष्यमाध्यापयतःकुतोऽपशः ॥१४॥

टीका—दुष्ट राजाके राज्यमें प्रजाको सुख, और
कुमित्र मित्रसे आनन्द, कैसे हो सकता है, दुष्ट स्त्रीसे गृह
में प्रीति और कुशिष्यको पढ़ानेवाले की कीर्ति, कैसे
होगी ॥ १४ ॥

सिंहादेकं बकादेकं शिक्षेच्चत्वारिकुक्कुटात् ॥
बायसात्पंचशिक्षेच्चषट्शुनस्त्रीणिगर्दभात् ॥५॥

टीका—सिंहसे एक, बकुलसे एक, कक्कुटसे
चार, कौवेसे पांच, कुत्तेसे छः और गदहेसे तीन गुण

सीखनः उचित है ॥ १५ ॥

प्रभूतंकार्यमल्पंवातन्नरःकर्तुमिच्छति ॥

सर्वारंभेणतत्कार्यसिंहादेकंप्रचक्षते ॥ १६ ॥

टीका—कार्य छोटा हो वा बड़ा, जो करणीय हो उसको सब प्रकारके प्रथलसे करना उचित है, इस एकको सिंहसे सिखना कहते हैं ॥ १६ ॥

इन्द्रियाणि च संयम्य वक्तव्यं छिडितो नः
देश काल बलं ज्ञात्वा सर्वकार्याणि साधयेत् ॥ १७ ॥

टीका—विद्वान् पुरुषको चाहिये कि, इन्द्रियोंका संयम करके देश काल और बलको समझकर बकुलाके समान सब कार्यको साधे ॥ १७ ॥

प्रत्युत्थानं च युद्धं च संविभागं च वन्धुषु ॥
स्वयमाक्रम्य भोगं च शिक्षेच्च त्वा रिकुकुटात् ॥ १८ ॥

टीका—उचित समय में जागना, रणमें उघत रहना और बन्धुओंको उनका भाग देना और आए आक्रमण करके भोग करें, इन चार बातोंको कुकुटसे सीखना चाहिये ॥ १८ ॥

गूढमैथुनं चारित्वम् काले चालय संग्रहम् ॥
अप्रमादम् विश्वासं पंचशिक्षेच्च वायसात् ॥ १९ ॥

टीका—छिपकर मैथुन करना धैर्य करना समयमें घर

अध्यायः ६ ।

संग्रह करना सावधान रहना और किसी पर विश्वास
न करना इन पांचों को कौवेसे सीखना उचित है ॥१९॥

बद्धाशोस्वल्पसंतुष्टः सुनिद्रोलघुचेतनः ॥
स्वामिभक्तश्वरश्वषडेतेश्वानतोगुणाः ॥२०॥

टीका—बहुत खानेकी शक्ति रहते भी थोड़े ही से संतुष्ट हैं ना, गाढ़ निद्रा रहते भी भटपट जागना, स्वामी की भक्ति और शूरता इन छः गुणों को कुचे से सीखना चाहिये ॥ २० ॥

सुश्रावांतोऽपिवहेद्वारंशीतोष्णिनचपश्यति ॥
संतुष्टश्वरतेनित्यंत्रीणिशिक्षेच्चगर्दभात् ॥२१॥

टीका—अत्यंत थक जाने पर भी बोझ को ढोते जाना, शीत और उष्ण पर दृष्टि न देना, सदा सन्तुष्ट होकर विचरना, इन तीन बातों को गढ़ ही से सीखना चाहिये ॥

यएतान् विंशतिगुणानाचरिष्यतिमानवः ॥
कार्यावस्थासु सर्वासु अजेयः सभविष्यति ॥२२॥

टीका—जो नर इन बीस गुणों को धारण करेगा वह सदा सब कार्यों में विजयी होगा ॥ २२ ॥

इति षष्ठोध्यायः ॥ ६ ॥

अथ सप्तमोद्यायः ७

अंर्थनार्थमनस्तापंगृहिणीचरितानिच ॥
नीचवाक्यंचापमानंमतिमान्नप्रकाशयेत् ॥१॥

टीका—धनका नाश, मनकाताप, गृहणीकाचरित्र नीच का बचन और अपमान इनको बुद्धिमान् प्रकाश न करें।

धनधान्यप्रयोगेषुविद्यासंग्रहणेषुच ॥
आहारेठ्यवहारेचत्यक्तलज्जःसुखीभवेत् ॥ २ ॥

टीका—अन्त और धनके व्यापारमें विद्याके संग्रह करने में, आहार और व्यहारमें जो पुरुष लज्जाको दूर रखेगा वह सुखी होगा ॥ २ ॥

संतोषामृततृप्तानांयत्सुखंशांतिरेवंच ॥
न चतद्वन्नलुभ्यानामितश्वेतश्वधावताम् ॥ ३ ॥

टीका—संतोषरूपी अमृतसे जो लोग तृप्ति होते हैं उनको जो शांतिसुख होता है वह धनके लोभसे जो इधर उधर दौड़ा करते हैं उनको नहीं होता ॥ ३ ॥

संतोषस्विषुकर्तव्यःस्वदारेभोजनेधने ॥
त्रिषुचैवनकर्तव्योऽध्ययनेजपदानयोः ॥ ४ ॥

टीका—अपनी स्त्री भोजन और धन इन तीनोंमें सन्तोष करना चाहिये, पढ़ना जप और दान इन तीनों सन्तोष कभी नहीं करना चाहिये ॥ ४ ॥

अध्यायः ७ ।

विप्रयोर्विप्रवह्न्योश्वदंपत्योःस्वामिभृत्ययोः ॥
अन्तरेणनगंतव्यंहलस्यवृषभस्यच ॥ ५ ॥

टीका—दो ब्राह्मण, ब्राह्मण और आमि, स्त्री पुरुष, स्वामी भृत्यहल और बैल इनके मध्य होकर नहीं जाना चाहिये ॥ २ ॥

पादाभ्यांनस्पशेदग्निंगुरुंब्राह्मणमैवच ॥
नैवगांनकुमारींचनवृद्धंनशिशुंतथा ॥ ६ ॥

टीका—अमि, गुरु और ब्राह्मण, इनको पैरसे कभी नहीं छूना चाहिये वैसेही गौको कुमारिको, वृद्धको और बालकको, पैरसे न छूना चाहिये ॥ ६ ॥

शकटंपंचहस्तेनदशहस्तेनवाजिनम् ॥
हस्तिहस्तसहस्रेणदेशत्यागेनदुर्जनम्: ॥ ७ ॥

टीका—गाड़ी को पांच हाथ पर, घोड़ेको दस हाथ पर, हाथी को हजार हाथ पर, दुर्जनको देश त्याग करके छोड़ना चाहिये ॥ ७ ॥

हस्तीह्यंकुशमात्रेणवाजीहस्तेनताढ्यते ॥
श्रृंगीलगुडहस्तेनखड्हहस्तेनदुर्जनः ॥ ८ ॥

टीका—हाथी केवल अंकुशसे, घोड़ा हाथसे, सींग वाले जन्तु लाठीसे और दुर्जन तरवारसंयुक्त हाथ से ढंड पाते हैं ॥ ८ ॥

तुष्यन्तिभोजनेविप्रामयुगधनगर्जिते ॥
साधवः परसम्पत्तौ खलाः परविपत्तिषु ॥ ९ ॥

टीका—भोजनके समय ब्राह्मण और मेघके गर्जते पर मयूर, दूसरेको सम्पति प्राप्त होनेपर साधु और दूसरेको विपत्ति अनेपर दुर्जन सन्तुष्ट होते हैं ॥ ९ ॥

अनुलोमेनवलिनं प्रतिलोमेनदुर्बलम् ॥
आत्मतुल्यवलंशत्रुं विनयेनवलेनवा ॥ १० ॥

टीका—बली वैरीको उसके अनुकूल व्यवहार करने से यदि वह दुर्बल हो तो उसे प्रतिकूलतासे बचा करें, बलमें अपने समान शत्रुको विनयसे अथवा बलसे जीते ॥ १० ॥

बाहुर्वीर्यवलं राज्ञो ब्राह्मणो ब्रह्मविद्वली ॥
रूपयोवनमाद्युर्यखीणावलमनुत्तमम् ॥ ११ ॥

टीका—राजाको बाहुर्वीर्य बल है और ब्राह्मण ब्रह्मज्ञानी वा वेदपाठी बली होता है और स्त्रियोंको सुन्दरता, तत्त्वज्ञता और मधुरता अति उत्तम बल है ॥ ११ ॥

नात्यन्तं सरलै भावियं गत्वा पद्यवनस्थलीम् ॥
छिद्यं ते सरलास्त्रकुञ्जास्तिष्ठंति पादपाः ॥ १२ ॥

टीका—अत्यन्त सीधे स्वभावसे नहीं रहना चाहिये.

इस कारण कि बनमें जाकर देखो, सीधे वृक्ष काटे जाते हैं और टेढ़े खड़े रहते हैं ॥ १२ ॥

यत्रोदकंतत्रवसंतिहंसास्तथैवशुष्कंपरिवर्जयंति
नहंसंतुल्येननरेणभाव्यंपुनस्त्यजंतः पुनराश्र-
यन्तेः ॥१३ ॥

टीका—जहाँ जल रहता है वहाँ ही हंस बसते हैं, वैसेही सूखे सरको छोड़ देते हैं, नरको हंसके समान नहीं रहना चाहिये कि, वे बार बार छोड़ देते हैं और बार बार आश्रय लेते हैं ॥ १३ ॥

उपार्जितानांवित्तानांत्यागएवहिरक्षणम् ॥
तडागोदरसंस्थानांपरिस्त्रवइवांभसाम् ॥१४॥

टीका—अर्जित धनोंका व्यय करना ही रक्षा है, ऐसे तडागके भीतरके जलका निकालना ॥ १४ ॥
यस्यार्थस्तस्यमित्राणियस्यार्थस्तस्यबांधवः ॥
यस्यार्थःसपुमाल्लोकेयस्यार्थसच्चजीवति ॥१५॥

टीका—जिसको धन रहता है उसीके मित्र होते हैं, जिसके पास अर्थ रहता है उसीके बन्धु होते हैं, जिसके धन रहता है वही पुरुष गिना जाता है, और जिसके अर्थ है वही जीता है ॥ १५ ॥

स्वर्गस्थितानामिहजीवलोकेचत्वारिचिह्नानिव-
संतिदेये ॥ दानप्रसंगोमधुराचवाणीदेवार्चनंब्रा-

व्याणतर्पणं च ॥ १६ ॥

टीका—संसारमें आनेपर स्वर्गवासियोंके शरीरमें चार चिन्ह रहते हैं. दानका स्वभाव, मीठा बचन, देवता की पूजा और ब्राह्मणको तृप्त करना अर्थात् जिन लोगोंमें दान आदि लक्षण रहें उनको जानना चाहिये कि वे अपने पुण्यके प्रभावसे स्वर्गवासी मर्त्यलोकमें अवतार लिये हैं ॥ १६ ॥

अत्यन्तकोपः कटुकाचवाणीदरिद्रताचस्वजने-
षुवैरं ॥ नीचप्रसंगः कुलहीनसेवाचिन्नानिदेहेन-
रकस्थितानाम् ॥ १७ ॥

टीका—अत्यंत क्रोध, कटु बचन, दरिद्रता, अपने जनाँमें बैर, नीचका संग कुलहीनकी सेवा ये चिन्ह नरकवासियोंके देहोंमें रहते हैं ॥ १७ ॥

गम्यतेयदिमृगेन्द्रमंदिरं लभ्यते करिकपोलमौ-
किकम् ॥ जंबुकालयगतेच प्राप्यते वत्सपुच्छ-
खरचर्मखण्डनम् ॥ १८ ॥

टीका—यदि, कोई सिंहके गुहामें जा पड़े तो उस को हाथीके कपोलकी मोती मिलते हैं. और सियार के स्थानमें जानेपर बछवेकी पूँछ और गदहेके चमड़े का टुकड़ा मिलता है ॥ १८ ॥

शुनः पुच्छमिव वृथर्थं जीवितं विद्यया विना ॥
न गुह्यगोपने शक्तं न च दंशने वारणे ॥ १९ ॥

टीका—कुत्तेके पूँछके समान विद्याविना जीना व्यर्थ हैं। कुत्तेकी पूँछ गोप्यइन्द्रियको ढांप नहीं सकती है न मछड आदि जीवोंको उडा सकती है ॥ १६ ॥

वाचांशौचं च मनसः शौचमिन्द्रियनिग्रहः ॥
सर्वभूतदयाशौचमेतच्छोचं परार्थिनाम् ॥ २० ॥

टीका—बचनकी शुद्धि, मनकी शुद्धि इन्द्रियोंका संयम सब जीव पर दया और पवित्रता ये परार्थियों की शुद्धि है ॥ २० ॥

पुष्पेगंधं तिलैतलंकाष्ठेभिपयोसघृतम् ॥
इक्षौगुडं तथा देहे पश्यात्मानं विवेकताः ॥ २१ ॥

टीका—फूलमें गन्ध, तिलमें तेल, काष्ठमें आग दूध में धी, ऊषमें गुड, जैसे वैसेही देहमें आत्माको विचारसे देखो ॥ २१ ॥

इति सप्तमोऽध्याय ॥ ७ ॥

अथ अष्टमोऽध्यायः ८ ।

अधमाधनमिच्छन्तिधनं मानं च मध्यमाः ॥
उत्समामानमिच्छन्ति मानो हि महतां धनम् ॥ १ ॥

टीका—अधम धनही चाहते हैं, मध्यम धन और मान, उत्तम मानही चाहते हैं इस कारण कि महात्माओं का धन मान ही है ॥ १ ॥

इक्षुरापः पयोमूलं ताम्बूलं फलमौषधम् ॥
भक्षयित्वा पिकर्तव्याः स्नानदानादिकाः क्रियाः ॥

टीका—ऊष, जल, दूध, मूल, पान, फल, और
औषध इन वस्तुओंके भोजन करनेपरभी स्नान दान
आदि क्रिया करनी चाहिये ॥ २ ॥

दीपो भक्षयते ध्वांतं कज्जलं च प्रसूपते ॥ यदन्नं
भक्ष्यते नित्यं जायते तादृशी प्रजा ॥ ३ ॥

टीका—दीप अन्धकारको खाय जाता है और काजल
को जन्माता है, जैसा अन्न सदा खाता है वैसीही
उसकी सन्तरी होती है ॥ ३ ॥

वित्तं देहि गुणान्विते षुमतिमन्नान्यत्र देहिकं चित्
प्राप्तं वारिनि धेर्जलं घनमुखे माधुर्ययुक्तं सदा ॥
जीवान् म्थावरजंगमांश्च सकलान् संजीव्य भूमं
डंलं । भूयः पश्यति देवको टिगुणितं गच्छत मम् भाँ
निधम् ॥ ४ ॥

टीका—हे मतिमन् गुणियोंको धन दो औरोंको
कभी मत दो समुद्रसे मेघके मुखमें प्राप्त होकर जल
सदा मधुर हो जाता है, पृथ्वीपर चर अचर सब जीवोंको
जिलाकर फिर देखो, वही जल को टिगुणा होकर
उसी समुद्रमें चला जाता है ॥ ४ ॥

चाडालानास हस्तैश्च सूरि भिस्तत्तदर्शिभिः ॥
एको हियवनः प्रोक्तो नीचो यवनात्परः ॥ ५ ॥

टीका—तत्त्वदर्शियोंने कहा है कि, सहस्रचांडालोंके तुल्य एक यवन होता है और यवनसे नीच दूसरा कोई नहीं है ॥ ५ ॥

**तैलाऽपंगेचिताधूमैथुनेक्षौरकर्मणि ॥ ताव
झवतिचांडालोयावत्स्नानंसमाचरेत् ॥ ६ ॥**

टीका—तेल लगानेपर, चिताके धूम लगानेपर, स्त्री प्रसंग करनेपर, बाल बवानेपर, तबतक चाण्डालही बना रहता है जबतक स्नान नहीं करता है ॥ ६ ॥

**अजीर्णेभेषजंवारिजीर्णेवारिबलप्रदम् ॥
भोजनेचामृतंवारिभोजनांतेविषप्रदम् ॥ ७ ॥**

टीका—अंपच होनेपर जल औषध है, पचजानेपर जल बलको देता है, भोजन के समय पानी अमृत के समान है, और भोजनके अन्तमें विषका फल देता है ॥ ७ ॥

**हतंज्ञानंक्रियाहीनंहतश्वाज्ञानतोनरः ॥ हतंनि
र्नायिकंसैन्यंस्त्रियोनष्टाह्नभर्तृकाः ॥ ८ ॥**

टीका—क्रियाके बिना ज्ञान वर्ध्य है, अज्ञानसे नर मारा जाता है सेनापतिके बिना सेना मारी जाती है और स्वामी हीन स्त्री नष्ट होजाती है ॥ ८ ॥

**वृद्धकालेमृताभार्यांबिंधुहस्तगतंधनम् ॥
भोजनंचपराधीनंतिस्त्रःपुंसांविडम्बनाः ॥ ९ ॥**

टीका—बुढ़ापें सरी छ्री, बन्धुके हाथमें गया धन और दूसरेके आधीन भोजन येंतीन पुरुषोंकी विडम्बना है अर्थात् दुखःदायक होते हैं ॥ ६ ॥

आग्निहोत्रविनावेदानचदानंविनाक्रिया ॥
नभावेनविनासिद्धिस्तस्माद्वावोहिकारणम् ॥१०॥

टीका—अग्निहोत्रके बिना वेदका पठना व्यर्थ होता है दानके बिना यज्ञादिक क्रिया नहीं बनती, भावके बिना कोई सिद्धि नहीं होती इसहेतु प्रेमही सबका कारण है ॥ १० ॥

काष्ठपाषाणाधातूनांकृत्वाभावेनसेवनम् ॥श्रद्ध
याचतथासिद्धिस्तस्यविष्णोःप्रसादतः ॥११॥

टीका—धातु काष्ठ पाखान भावसहित सेवन करना श्रद्धासेती भगवत् कृपासे जैसा भावहै तैसाही सिद्ध होता है ॥ ११ ॥

नदेवोविद्यतेकाष्ठेनपाषाणेनमृत्यम् ॥
भावेहिविद्यतेदेवस्तस्माद्वावोहिकारणम् ॥१२॥

टीका—देवता काठमें नहीं है, न पाषाणमें है, न मृतिकाकी मूर्तिमें है. निश्चय है कि देवता भावमें विद्यमान है, इसहेतु भावही सबका कारण है ॥ १२ ॥

शांतितुल्यंतपोनास्तिनसंतोषात्परंसुखम् ॥
नतृष्णायाःपरोऽयाधिर्नच्छमोदयापरः ॥१३॥

टीका—शांति के समान दूसरा तप नहीं, न संतोष से परे मुख, न तृष्णा से दूसरी व्याधी है, न दयासे आधिक धर्म ॥ १३ ॥

क्रोधोवैवस्वतोरजातृष्णावैतरणीनदी ॥
विद्याकामदुधाधेनुःसंतोषोनन्दनंवनम् ॥ १४ ॥

टीका—क्रोध यमराज है और तृष्णा वैतरणीनदी है, विद्या कामधेनु गाय है और सन्तोष इन्द्रकी वाटिका है ॥ १४ ॥

गुणोभूषयतेरूपंशीलंभूषयतेकुलम् ॥
सिद्धिर्भूषयतेविद्याभोगोभूषयतेधनम् ॥ १५ ॥

टीका—गुण रूपको भूषित करता है, शील कुलको अलंकृत करता है, सिद्धि विद्याको भूषित करती है और भोग धनको भूषित करता है ॥ १५ ॥

निर्गुणस्थहतंरूपंदुःशीलस्थहतंकुलम् ॥ अ
सिद्धस्थहताविद्याअभोगेनहतंधनम् ॥ १६ ॥

टीका—निर्गुणकी सुंदरता व्यर्थ है, शीलहीनका कुल निंदित होता है, सिद्धिके बिना विद्या व्यर्थ है भोग के बिना धन व्यर्थ है ॥ १६ ॥

शुद्धभूमिगतंतोर्यंशुद्धानारीपतिव्रता ॥
शुचिःक्षेमकरोरजासंतुष्टोन्नाशणःशुचिः ॥ १७ ॥

टीका—भूमिगत जल पवित्र होता है, पतिव्रतां स्त्री

पवित्र होती है कल्याण करनेवाला राजा पवित्र गिना जाता है, ब्राह्मण संतोषी शुद्ध होता है ॥ १७ ॥

असन्तुष्टाद्विजानष्टाःसंतुष्टाश्चमहीपतिः ॥
सलज्जागणिकानष्टानिलज्जाश्चकुलांगनाः ॥८॥

टीका—असंतोषी ब्राह्मण निंदित गिनेजाते हैं और संतोषी राजा, सलज्जा वेश्या और लज्जाहीन कुल स्त्री निंदित गिनि जाती है ॥ १८ ॥

किंकुलेनविशालेनविद्याहीनेनदोहिनाम् ॥
दुष्कुलंचापिविदुषोदेवैरपिसुपूज्यते ॥ १९ ॥

टीका—विद्याहीन बडेकुलमें मनुष्योंको क्या लाभ है? विद्वान् का नीचभी कुल देवतोंसे पूजा जाता है ॥ १९ ॥

विद्वान्प्रशस्यतेलोकेविद्वान्सर्वत्रगोरवम् ॥
विद्ययालभंतंसर्वविद्यासर्वत्रपूज्यते ॥ २० ॥

टीका—संसारमें विद्वान् ही प्रशंसित होता है विद्वान् ही सब स्थानोंमें आदर पाता है विद्याहीनसे सब मिलता है विद्याहीन सब स्थानमें पूजित होती है ॥ २० ॥

रूपयैवनसंपन्नाविशालकुलसंभवाः ॥
विद्याहीनानशोभंतेनिर्गंधाइवकिंशुकाः ॥ २१ ॥

टीका—सुंदर, तरुणतायुत और बडे कुलमें उत्पन्न भी विद्याहीन पुरुष ऐसे नहीं शोभते, जैसे बिनागंध पलाश के फूल ॥ २१ ॥

मासभक्ष्याः सुरापानामुख्याक्षरवर्जिताः ॥
पशुभिः पुरुषाकारे भर्त्राक्रांतास्तिमेदिनी ॥ २२ ॥

टीका—मांस के भक्षण और मदिरापान करनेवाले, निरक्षर, और मूख्य इन पुरुषाकार पशुओंके भारसे पृथिवी पीडित रहती है ॥ २२ ॥

अन्नहीनो दहेद्राघ्मंत्रहीनश्चकृत्विजः ॥
यजमानं दानहीनो नास्तियज्ञसमोरिपुः ॥ २३ ॥

टीका—यज्ञ यदि अन्नहीन हो तो, राज्यको मंत्रहीन हो तो क्रृत्विजोंका दानहीन हो तो यजमानको जलाता है, इस कारण यज्ञके समान कोई भी शत्रु नहीं है ॥ २३ ॥

इतिवृद्धचाणव्ये अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

— : ० + : —

नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

मुक्तिमिच्छसि चेत्तत्विषयान्विषवत्यज ॥
क्षमार्जवदयाशौचं सत्यं पीयूषवत्पिव ॥ १ ॥

टीका—हे मार्गी, यदि मुक्ति चाहते हो तो विषयों को विषके समान छोड़ दो ! सहनशीलता, सरलता, दया पवित्रता और सचाईको अमृतकीनाई पिओ ॥ १ ॥

परस्परस्य मर्मणिये भाषं तेन राधमाः ॥ तएव
विलयं यांति बल्मीकोदग्सर्पवत् ॥ २ ॥

टीका—जो नराधम परस्पर अंतरात्माके दुःखदायक बचनको भाषण करते हैं वे निश्चयकरिके नष्ट होजाते हैं, जैसे विमोटमें पड़कर सांप ॥ २ ॥

गंधःसुवर्णफलमिक्षुदंडेनाकारिपुष्ट्यस्वलुचंदन
स्य ॥ विद्वान् धनीभूपतिर्दीर्घजीवीधातुः पुरा
कोऽपिनबुद्धिदोऽभूत् ॥ ३ ॥

टीका—सुवर्णमें गन्ध, ऊषमें फल, चंदनमें फुल, विद्वान् धनी और राजा चिरजीवी न किया इससे निश्चय है कि, विधाताके पहिले कोई बुद्धिदाता न था ॥ ३ ॥

सर्वैषधीनाममताप्रधानासर्वेतुसौख्येष्वशर्नप्र
धानम् ॥ सर्वैङ्गेयन्णानयनंप्रधानंसर्वेषुगात्रेषु
शिरःप्रधानम् ॥ ४ ॥

टीका—सब औषधियोंमें गुरुच गिलोह प्रधान है, सब सुखोंमें भोजन श्रेष्ठ है; सब इन्द्रियोंमें आंख उत्तम है; सब अंगोंमें शिर श्रेष्ठ है ॥ ४ ॥

दूतोनसंचरतिखेनचलेच्चवार्तापूर्वनजलिपतमि
दनचसंगमोस्ति ॥ व्योम्निस्थितंरविशशिग्रह
णंप्रशस्तंजानातियोद्विजवरःसकथंनविद्वान् ॥ ५ ॥

टीका—आकाशमें दूत नहीं जासक्ता, न वार्ताकी चर्चा चलसक्ती न पहिलेहीसे किसीने कहरक्खा

है और न किसीसे संगम होसकता; ऐसी दशामें
आकाशमें स्थित सूर्यचन्द्रके ग्रहणको जो द्विजवर
स्पष्ट जानता है वह कैसे विद्वान् नहीं है ॥ ५ ॥

**विद्यार्थीसेवकःपाथःकुधार्तेभयकातरः॥ भा
डारीप्रतिहारीचसप्तसुप्तान्प्रबोधयेत् ॥ ६ ॥**

टीका—विद्यार्थी, सेवक, पथिक भूखसे पीड़ित, भयसे
कातर, भांडारी और ढारपाल ये सात यदि सोतेहों
तौ जगादेनाचाहिये ॥ ६ ॥

**अहिंन्पंचशादूलंविटिंचबालकंतथा ॥
परश्वानंचमूर्खंचसप्तसुप्तान्प्रबोधयेत् ॥ ७ ॥**

टीका—सांप, राजा, व्याघ्र, बरै, वैसेही बालक,
दूसरेका कुत्ता और मूर्ख ये सात सोते हों तौ नहीं
जगाना चाहिये ॥ ७ ॥

**अर्थाधीताश्वयैर्वदास्तशाद्रान्नभोजिनः ॥
तेद्विजाःकिंकरिष्यन्तिनिर्विषाइवपन्नगाः॥८॥**

टीका—जिन्होंने धनके अर्थ वेदको पढ़ा, वैसेही
जो शूद्रका अन्न भोजन करते हैं वे ब्राह्मण विषहीन
सर्पके समान क्या करसकते हैं ॥ ८ ॥

**यस्मिन्रुष्टेभयंनास्तितुष्टेनैवधनागमः ॥
निग्रहोऽनुग्रहोनास्तिसरुष्टःकिंकरिष्यति ॥९॥**

टीका—जिसके क्रुध होनेपर न भय है, प्रसन्न होनेपर न धनका लाभ, न दंड वा अनुग्रह होसका है वह रुष्ट होकर क्या करेगा ॥ ६ ॥

**निर्विषेणापिसर्पेणकर्तव्यामद्वतीफणा ॥
विषमस्तुनचाप्यस्तुघटाटोपोभयंकरः ॥१०॥**

टीका—विषहीनभी सांपको अपनी फण बढाना चाहिये. इस कारण कि, विष हो वा न हो आडंबर भयजनक होता है ॥ १० ॥

**प्रातर्द्यूतप्रसंगेनमध्याहेस्त्रीप्रसंगतः ॥
रातौचौरप्रसंगेनकालोगच्छतिधीमताम् ॥११॥**

टीका—प्राप्तःकालमें जुआड़ियोंकी कथासे अर्थात् महाभारतसे मध्यान्हमें स्त्रीके प्रसंगसे अर्थात् रामायण से, रात्रीमें चोरकी वार्तासे अर्थात् भागवतसे, बुद्धिमानोंका समय बीतता है ॥ तात्पर्य यह कि, महाभारतके सुननेसे वह निश्चय होजाता है कि, जुआ, कलह और छलका घर है. इसलोक और परलोकमें उपकार करनेवाले कामोंको महाभारतमें लिखीहुई रीतियोंसे करनेपर उन कामोंका पूरा फल होताहै; इस कारण बुद्धिमान् लोग प्राप्तःकालहीमें माहाभारतको सुनते हैं, जिससे दिनभर उसीरीतीसे काम करते जाय. रामायण सुननेसे स्पष्टउदाहरण मिलता है कि, स्त्रीके वश होनेसे अत्यन्त दुःख होता है और परस्तीपर दृष्टि देनेसे पुत्र कलत्र जड़.

मूलके साथ पुरुषका नाश होजाता है; इसहेतु, मध्यान्हमें अच्छे लोग रामायणको सुनते हैं प्रायः रात्रि में लोग इन्द्रियोंके वश होजाते हैं और इन्द्रियोंका यह स्वभाव है कि, मनको अपने अपने विषयोंमें लगाकर जीवको विषयोंमें लगादेती हैं; इसीहेतु से इन्द्रियोंको आत्माप्रहारीभी कहते हैं और जो लोग रात को भागवत सुनते हैं वे कृष्णके चरित्रको स्मरण करके इन्द्रियोंके वश नहीं होते. क्योंकि सोलह हजार से अधिक खियोंके रहते भी श्रीकृष्णचन्द्र इन्द्रियोंके वश न हुए और इन्द्रियोंके संयमकी रीति भी जानजाते हैं। ११।

स्वहस्तग्रथितामालास्वहस्तघृष्टचन्दनम् ॥

स्वहस्तलिखितस्तोत्रंशक्त्यापिश्रियंहरेत् ॥ १२ ॥

टीका—अपने हाथसे गुथी माला, अपने हाथसे घिसा चंदन, अपने हाथसे लिखा स्तोत्र ये इन्द्रकी लक्ष्मीको भी हरलेते हैं। ॥ १२ ॥

इक्षुदंडास्तिलाः शूद्राः कांताहेमचमेदिनी ॥
चंदनं दधितां बूलं मर्दनं गुणवर्धनम् ॥ १३ ॥

टीका—ऊष, तिल, शूद्र, कांता, सोना, पृथ्वी, चन्दन, दही और पान इनका मर्दन गुणवर्द्धन है। ॥ १३ ॥

दरिद्रताधीरतयाविराजते कुवस्त्रिताशुभ्रतयावि
राजते। कर्दन्तताचोष्णतयाविराजते कुरुपता
शीलतयाविराजते ॥ १४ ॥

टीका—दूरिद्रिताभी धीरतासे शोभता है स्वच्छतासे
कुवस्त्र सुंदर जानपड़ता है, कुअन्नभी उष्णतासे मीठा
लगता है कुरुपताभी सुशीलता होतो शोभा देता है॥१४॥

॥ इति नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

—————+—————

अथ वृद्धचाणक्यस्योत्तरार्द्धम् ।

दशमोऽध्यायः १०

धनहीनोनहीनश्चधनिकःससुनिश्चयः ॥
विद्यारत्नेनहीनोयःसहीनःसर्ववस्तुषु ॥ १ ॥

धनहीन हीन नहीं गिना जाता, निश्चय है कि,
वह धनी ही है, विद्यारत्नसे जो हीन है वह सब
वस्तुओं में हीन है ॥ १ ॥

दृष्टिपूतंन्यसैत्पादंवस्त्रपूतंपिवेजजलम् ॥
शास्त्रपूतंवदेष्टाक्यंमनःपूतंसमाचरेत् ॥ २ ॥

टीका—दृष्टि से शोधकर पांव रखना उचित है, वस्त्र
से शुद्ध कर जल पीवे, शास्त्र से शुद्धकर वाक्य बोले
और मन से सोच कर कार्य करना चाहिये ॥ २ ॥

सुखार्थीचेत्यजेष्टिव्यार्थिविद्यार्थीचेत्यजेत्सुखं ॥
सुखार्थिनःकुतोविद्यासुखंविद्यार्थिनःकुतः ॥ ३ ॥
टीका—यदि सुख चाहे तो विद्याको छोड़दे, यदि

विद्या चाहे तो सुख का त्याग कैसे^३ सुखा धीर्घक्षण विद्या
कैसे होगी और विद्यार्थीको सुख कैसे होगा ॥ ३ ॥

कवयः किं न पश्य अंति किं न कुर्वति योषितः ॥ ४ ॥
मद्यपा: किं न जल्प अंति किं न खाद्यति वायसा: ॥ ४ ॥

टीका-कवि क्या नहीं देखते, स्त्री क्या नहीं कर सकती, मध्यपी क्या नहीं बकते और कौबे क्या नहीं खाते ॥ ४ ॥

रंकं करोति राजानं राजानं रंकमेवच ॥
धनिनं निर्धनं चैव निर्धनं धनिनं विधिः ॥ ५ ॥

टीका-निश्चय है कि विधि रंकको राजा, राजा को रंक धनीको निर्धन और निर्धनको धनी कर देता है ॥ ५ ॥

लुभानायाचकः शत्रुमूर्खाणाबोधकोरिपुः ॥
जारखोणापतिः शत्रुश्चोराणांचंद्रमारिपुः ॥ ६ ॥

टीका-लोभियोंको याचक और मूर्खोंको समझाने वाला और पुंश्चलीस्त्रियोंको पति और चोरोंको चन्द्रमा शत्रु है ॥ ६ ॥

येषां न विद्यान तपो न दानं न चापि शोलुभागुणो न
धर्मः ॥ ते मृत्युलोके भुविभारभूत् मोर्ज्यरूपेण
मृगाश्चरन्ति ॥ ७ ॥

टीका-जिन लोगों में न विद्या है, न तप है, न दान है न शील है न गुण है और न धर्म है वे संसार में पृथ्वीपर भार रूप होकर मनुष्यरूपसे मृग बत फिर रहे हैं ॥ ७ ॥

अंतःसारविहीनानासुपदेशोनजायते ॥

मलयाचलसंसर्गान्नवेगुइचंदनायते ॥ ८ ॥

टीका-गंभीरता विहीन पुरुषोंको शिक्षा देना सार्थक नहीं होता, मलयाचलके संगमे बांस चन्दन नहीं होजाता ॥ ८ ॥

यस्यनास्तिस्वयंप्रज्ञाशास्त्रित्स्यकरोतिकिं ॥
लोचनाभ्यांविहीनस्यदर्पणंकिंकरिष्यति ॥ ९ ॥

टीका-जिसकी स्वाभाविक बुद्धि नहीं है उसको शास्त्र क्या कर सकता है आँखोंसे हीनको दर्पण क्या करेगा ॥ ९ ॥

दुर्जनंसज्जनंकर्तुमुपायोनहिभितले ॥

श्रपानंशतधाधौतंनश्रेष्ठमिन्द्रियंभवेत् ॥ १० ॥

टीका-दुर्जनको सज्जन करनेके लिये पृथ्वीतलमें कोई उपाय नहीं है, मलका त्याग करनेवाली इन्द्रिय सौबारभी धोई जाय तोभी श्रेष्ठ इन्द्रिय न होगी ॥ १० ॥

आपदेषाङ्गवेनमृत्युःपरदेषाङ्गनक्षयः ॥

राजदेषाङ्गवेनाशोन्निष्ठदेषात्कुलक्षयः ॥ ११ ॥

टीका--बड़े के द्वेष से मृत्यु होती है शत्रु से विरोध करने से धन का क्षय है, राजा के द्वेष से नाश और ब्राह्मण के द्वेष से कुल का क्षय होता है ॥ ११ ॥

वरं वने ठ्याग्रगजेऽद्वेवितेऽमालयेपत्रफलाभुसे-
वनम् ॥ तृणेषु शश्याशतजीर्णवल्कलं न बंधु
मध्येधनहीन जीवनम् ॥ १२ ॥

टीका--बनमें बाघ और बड़े रहाथियों से सेवित वृक्ष के नीचे के पत्ते फल खाना, वा जल का पीना, घास पर सोना, सो टुकड़े के बकलों को पहिनना ये श्रेष्ठ हैं; पर बंधुओं के मध्य में धनहीन का जीना श्रेष्ठ नहीं है ॥ १२ ॥

विप्रो वृक्षस्तस्य मूलं च संध्यावेदाः शाखा धर्मक
र्माणि पत्रम् ॥ तस्मान्मूलं यतं तोरक्षणीयं छिन्ने
मूलै न वशाखान पत्रम् ॥ १३ ॥

टीका-- ब्राह्मण वृक्ष है, उसकी जड़ संध्या है, वेद शाखा है, और धर्म के कर्म पत्ते हैं, इसका रण प्रयत्न कर के जड़ की रक्षा करनी चाहिये, जड़ कटजाने पर न शाखा रहेगी और न पत्ते ॥ १३ ॥

माताचकमलादेवीपितादेवो जनर्दनः ॥
बांधवा विष्णुभक्ताश्वस्वदेशो भुवनत्रयम् ॥ १४ ॥

टीका--जिसकी लक्ष्मी माता है और विष्णु भगवान्

पिता हैं और विष्णुके भक्त बांधव हैं उसको तीनों
लोक स्वदेशहींहैं ॥ १४ ॥

एकवृक्षसमारूढानानावर्गाविहंगमाः ॥
प्रभातेदिक्षुदशसुयांतिकापरिवेदना ॥ १५ ॥

टीका-नाना प्रकारके पखेरू एकवृक्षपर बैठते हैं
प्रभात समय दश दिशा में होजाते हैं उसमें क्या
सोच है ॥ १५ ॥

बुद्धिर्स्यबलंतस्यनिर्बुद्धेश्चकुतोबलम् ॥
वनेसिंहोमदोन्मत्तोजंबुकेननिपातितः ॥ १६ ॥

टीका-जिसकोबुद्धि है उसीको बल है निर्बुद्धिको
बल कहांसे होगा देखो बनमें मदसे उन्मत सिंह
सियारसे मारागया ॥ १६ ॥

काचिंताममजीवने यदिहरिविश्वंभरोगीयते ।
नोचेदर्भकजीवनायजननीस्तन्यं कथंनिःस-
रेत् ॥ इत्यालोचमुहुर्मुहुर्युपतेलक्ष्मीपतेकेव
लम् । त्वत्पादांबुजसेवनेनसंततंकालोमया
नीयते ॥ १७ ॥

टीका-मेरे जीवनेमें क्या चिंता है यदि हरि विश्वका
पालनेवाला कहलाता है, ऐसा न होतो बच्चे के
जीनेके हेतु माताके स्तनमें दूध कैसे बनाते ? इस

को बार २ विचार करके हेयदुपति ! हेलक्ष्मी पति !!
सदा केवल आपके चरणकमलके सेवासे मैं समयको
बिताताहुं ॥ १७ ॥

गीर्वाणवाणीषुविशिष्टबुद्धिस्तथापिभाषांतरलो
लुपोहम् ॥ यथासुधायाममृतेचसेवितेस्वर्गंग
नानामधरासवेसुचिः ॥ १८ ॥

टीका—यद्यपि संस्कृतहीं भाषामें विशेष ज्ञान है
तथापि दूसरी भाषाकाभी मैं लोभी हूं जैसे अमृतके
रहतेभी देवताओंकी इच्छा स्वर्गकी स्थिर्यों के ओष्ठ
के आसवमें रहती है ॥ १८ ॥

अन्नादशगुणंपिष्टंपिष्टादशगुणंपयः ॥
पयसोऽष्टगुणंमांसंमांसादशगुणंघृतम् ॥ १९ ॥

टीका—चावलसे दशगुणा पिसान (चूनमें) गुण हैं.
पिसानसे दशगुणा दूधमें, दूधसे अठगुणा मांसमें,
मांससे दशगुणा धी में ॥ १९ ॥

शाकेनरोगावर्धते पयसावर्धते तनुः ॥
घृतेनवर्धते वीर्यमांसान्मांसंप्रवर्धते ॥ २० ॥

टीका—सागसे रोग, दूधसे शरीर, धीसे वीर्य, और
मांससे मांस, बढ़ता है ॥ २० ॥

इति छद्मचाणक्ये दशमोऽध्याय ॥ १० ॥

अथैकादशोऽव्यायः ११

दातृत्वंप्रियवक्तृत्वंधीरत्वमुचितज्ञता ॥
अभ्यासेननलभ्यन्तेचत्वारःसहजगुणाः ॥१॥

टीका—उदारता, प्रिय बोलना, धीरता और उचित का ज्ञान ये अभ्यास से नहीं मिलते, ये चारों स्वभाविक गुण हैं ॥ १ ॥

आत्मवर्गपरित्यज्यपरवर्गसमाश्रयेत् ॥
स्वयमेवलयंयातियथाराज्यजन्यधर्मतः ॥२॥

टीका—जो अपनी मण्डली को छोड़ परके वर्ग का आश्रय लेता है वह आपही लय को प्राप्त हो जाता है जैसे राजा के राज्य अधर्म से ॥ २ ॥

हस्तीस्थूलतनुःसचांकुशवशःकिंहस्तिमात्रौऽ
कुशोदीपैप्रज्वलितेप्रणश्यतितमःकिंदीपमात्रं
तमः ॥ वज्रेणापिहताःपतन्तिगिरयःकिंवज्र
मात्रन्नगाः तेजोयस्यविराजते सवलवान् स्थू
लेषुकःप्रत्ययः ॥ ३ ॥

टीका—हाथी का स्थूल शरीर है वह भी अंकुश के वज्र रहता है, तो क्या हस्ती के समान अंकुश है? दीप के जलने पर अंधकार आपही नष्ट हो जाता है, तो क्या कीप के तुल्य तम है? विष्णु के मारे पर्वत गिर जाते

हैं तो क्या बिजली पर्वतके समान है? जिसमें तेज
विराजमान रहता है वह बलवान् गिनाजाता है.
मोटेका कौन विश्वास है ॥ ३ ॥

कलौदशसहस्राणि हरिस्त्यजतिमेदिनीम् ॥
तदर्ढं जाह्नवीतोयं तदर्ढं ग्रामदेवताः ॥ ४ ॥

टीका—कलियुगमें दशसहस्रवर्षके बीतनेपर विष्णु
पृथ्वीको छोड़देते हैं. उसके आधेपर गंगाजी जलको,
तिसके आधेके बीतनेपर ग्रामदेवता ग्रामको ॥ ४ ॥

गृहासक्तस्य नो विद्या नो दयामांसभोजनः ॥
द्रव्यलुब्धस्य नो सत्यं स्वैणस्य न पवित्रता ॥ ५ ॥

टीका—गृहमें आसक्त पुरुषोंको विद्या, मांसके आहारी
को दया, द्रव्यलुब्धीको सत्यता, और व्यभिचारी को
पवित्रता, नहीं होती है ॥ ५ ॥

न दुर्जनः साधु दशा मुपैति व हु प्रकारैरपि शिक्ष्य
माणः ॥ आ मूलसिक्तः पय साधू तेन ननिं बृक्षा
मधुरत्वमेति ॥ ६ ॥

टीका—निश्चय है कि, दुर्जन अनेक प्रकारसे
सिखलायाभी जाय, पर उसमें साधूता नहीं आती
दूध और धीसे पालोपर्यंत नींबका वृक्ष सींचा जाय
पर उसमें मधुरता नहीं आती ॥ ६ ॥

अन्तर्गतमलोदुष्टस्तीर्थस्नानशतैरपि ॥
नशुद्धयतितथाभांडंसुरायादाहितंघयत् ॥ ७ ॥

टीका—जिसके हृदयमें पाप है वही दुष्ट है; वह तीर्थमें सौवार स्नानसेभी शुद्ध नहीं होता, जैसे मदिराका पात्र जलायाभी जाय तौभी शुद्ध नहीं होता, ॥ ७ ॥

नवेत्तियोयस्यगुणप्रकर्षसतंसदानिन्दतिनात्र
चित्रिम् ॥ यथाकिरातीकरिकुंभलब्धांमुक्तांपरि
त्यज्यविभर्तिगुंजाम् ॥ ८ ॥

टीका—जो जिसके गुणकी प्रकर्षता नहीं जानता वह निरंतर उसकी निंदा करता है. जैसे भिलिनी हाथीके मस्तकके नोतीको झोड़ घुंघुचीको पहिनती है ॥ ८ ॥

येतुसंवत्सरंपूर्णनित्यंमौनेनभुञ्जते ॥
युगकोटिसहस्रंतैपूज्यंतेर्स्वर्गविष्टपे ॥ ९ ॥

टीका—जो वर्षभर नित्य चुपचाप भोजन करता है वह सहस्रकोटि युगलों स्वर्गलोकमें पूजा जाता है॥९॥

कामक्रोधौतथालोभंस्वादुशंगारकौतुके ॥
अतिनिद्रातिसेवेचविद्यार्थीह्यष्टवर्जयेत् ॥ १० ॥

टीका—काम, क्रोध, लोभ, मर्ठी वस्तु, शृंगार, खेल अति निद्रा और अतिसेवा इन आठोंको विद्यार्थी छोड़देवे ॥ १० ॥

अकृष्टफलमूलानिवनवासरतिः सदा ॥
कुरुतेऽहरहःश्राद्मृषिर्विप्रःसउच्यते ॥११॥

टीका—बिना जोती भूमिसे उत्पन्न फल वा मूलको खाकर सदा बनवास करता हो और प्रतिदिन श्राद्ध करे ऐसा ब्राह्मण ऋषि कहलाता है ॥ ११ ॥

एकाहारेणसंतुष्टःषट्कर्मनिरतःसदा ॥
ऋतुकालाभिगामीचसविप्रोद्विजउच्यते ॥१२॥

टीका—एकसमयके भोजनसे संतुष्ट रहकर पढना, पढाना, यज्ञ करना कराना, दान देना और लेना इन छः कर्मोंमें सदा रत हो और ऋतुकाल में स्त्रीका संग करे तो ऐसे ब्राह्मण को द्विज कहते हैं ॥ १२ ॥

लौकिकेकर्मणिरतःपशनांपरिपालकः ॥
वाणिज्यकृषिकर्मायःसीविप्रोवैश्यउच्यते ॥१३॥

टीका—संसारिक कर्ममें रत हो और पशुओंका पालन, बनियाई और खेती करनेवाला हो वह विप्र वैश्य कहलाता है ॥ १३ ॥

लाक्षादितैलनीलीनाकौसुंभमधुसर्पिषा ॥
विक्रेतामद्यमांसानांसविप्रःशूद्रउच्यते ॥१४॥

टीका—लाख आदि पदार्थ, तेल नीली कुसूम, मधु धी, मद्य, और मांस जो इनका वेचनेवाला वह ब्राह्मण शूद्र कहाजाता है ॥ १४ ॥

परकार्यविहंताचदाभिकःस्वार्थसाधकः ॥
छलीद्वेषीमृदुःक्रूरोविप्रोमार्जरउच्यते ॥ १५ ॥

टीका—दूसरे के कामका विगाडनेवाला, दम्भी, अपने ही अर्थका साधनेवाला, छली, द्वेषी, उपर मृदु और अन्तःकरणमें क्रूरहो, तो वह ब्राह्मण विलार कहाजाता है ॥ १५ ॥

वापीकृपतडागानामारामसुरवेशमनाम् ॥
उच्छेदनेनिराशकःसविप्रोम्लेच्छउच्यते ॥ १६ ॥

टीका—बावड़ी, कुआ, तलाव, बाटिका, देवालय, इसके उच्छेद करने में जो निढ़र हो वह ब्राह्मण म्लेच्छ कहाजाता है ॥ १६ ॥

देवद्रव्यंगुरुद्रव्यंपरदाराभिर्मर्शनम् ॥
निर्वाहःसर्वभूतेषुविप्रश्वांडालउच्यते ॥ १७ ॥

टीका—देवताका द्रव्य और गुरुका द्रव्य जो हरता है और परस्तीसे संग करता है और सब प्राणियोंमें निर्वाह करलेता है वह विप्र चांडाल कहलाता है ॥ १७ ॥

देयंभोज्यधनंधनंसुकृतिभिन्नोंसंचयस्तस्यवै ।
श्रीकर्णस्यवलेश्विक्षमपतेरद्यापिकीर्तिःस्थि-
ता ॥ अस्माकंमधुदानभोगरहितंनष्टंचिरात्सं-
चितं । निर्वाणादितिनैजपादयुगलंघर्षत्पहोम
क्षिकाः ॥ १८ ॥

टीका—सुकृतियोंको चाहिये कि, सोग्योग धनको और द्रव्यको देवें कभी न संचे. कर्ण, बलि, विक्रमादित्य इन राजाओं की कीर्ति इस समय पर्यन्त वर्तमान है, दान भोग से राहित बहुत दिन से संचित हमारे लोगों का मधु नष्ट हो गया. निश्चय है कि, मधु मखियां मधु के नाश होने के कारण दोनों पाओं को घिसा करती हैं ॥ १८ ॥

॥ इति वृद्धचाणव्ये एकादशोऽध्याय ॥

अथ द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

सानंदं सदनं सुतास्तु सुधियः कांतप्रियालापि-
नी । इच्छापूर्तिं धनं स्वयोषिति रतिः स्वाज्ञापराः
सेवकाः ॥ आतिथ्यं शिवपूजनं प्रतिदिनं मिष्ठानं
पानं गृहे । साधोः संगमुपासते च सततं धन्यो
गृहस्थाश्रमः ॥ १ ॥

टीका—यदि आनंदयुक्त घर मिले और लड़के पंडित हों तो मधुरभाषणी हो, इच्छाके अनुसार धन हो अपनहीं त्वां में राति हो, आज्ञापालक सेवक मिलें, आतिथिकी सेवा और शिवकी पूजा हो प्रतिदिन गृह में मीठा अन्न और जल मिले सर्वदा साधूके संग की उपासना, यह गृहस्थाश्रमहीं धन्य है ॥ १ ॥

आर्तेषु विप्रेषु दयान्वितश्च यच्छ्रद्धया स्वल्पमुपैति

**दानम् ॥ अनंतपारं समुपैति राजन् यदीयते तन्त्र
लभेद्विजेन्यः ॥ २ ॥**

टीका—जो दयावान् पुरुष आर्त ब्राह्मणोंको श्रद्धासे
थोड़ाभी दान देता है उस पुरुषको अनन्त होकर वह
मिलता है. जो दिया जाता है वह ब्राह्मणोंसे नहीं
मिलता है ॥ २ ॥

**दक्षिण्यस्वजनेदयापरजने शाठ्यं सदादुर्जने,
प्रीतिः साधुजनेस्मयः खलजनेविद्वजनेचार्ज-
वम् ॥ सौर्यशत्रुजने क्षमागुरुजनेनारीजने
धूर्तता, इत्थेऽपुरुषाः कलासुकुशलास्तेष्वेव
लोकस्थितिः ॥ ३ ॥**

टीका—अपने जनमें दक्षता, दूसरे जनमें दया दुर्जन
में सदा दुष्टता, साधुजनमें प्रीति, खलमें अभिमान,
विद्वानोंमें सरलता, शत्रुजनमें शूरता, बड़े लोगोंके
विषयमें क्षमा, स्त्रीसे कामपड़नेपर धूर्तता, इस प्रकार
से जो लोग कलामें कुशल होते हैं उन्हींमें लोगकी
सर्वादा रहती है ॥ ३ ॥

**हस्तौदानविवर्जितौश्रुतिपुटौ सारस्वतद्रोहिणौ
नेत्रैसाधुविलोकनेन रहिते पादौ न तीर्थं गतौ ॥
अन्यायार्जितवित्तपूर्णमुदरं वर्गेणा तु गंशिगे रे रे
जम्बुकमुंच मुंच सहसानीचं सुनिंद्यं वपुः ॥ ४ ॥**

टीका—हाथ दान रहित है, कान वेदशान्त्रके विरोधी हैं, नेत्रोंने साधुका दर्शन नहीं किया, पांवने तीर्थगमन नहीं किया, अन्यायसे अर्जित धनसे उदर भरा है और गर्वसे शिर ऊँचा होरहा है. रे रे शियार ऐसे नीच निंद्य शरीरको शीत्र छोड ॥ ४ ॥

येशांश्रीमद्यशोदासुतपदकमले नास्तिभक्ति
र्नशणां, येषांमाभीरक्तन्याप्रियगुणकथनेनानु
रक्तारसंज्ञा ॥ येशांश्रीकृष्णलीलाललितरसं
कथासादरौनैवकर्णो, धिकृतान् धिकृतान्
धिगेतान्कथयतिसततंकीर्तनस्थौमृदंगः ॥५॥

टीका—श्रीयशोदासुतके पदकमलमें जिनलोगोंकी भक्ति नहीं रहती, जिनलोगोंकी जीभ अहीरकी कन्याओंके प्रियके अर्थात् श्रीकृष्णके गुणगानमें प्रीति नहीं रखती, और श्रीकृष्णजीकी लीलाकी ललितकथाका आदर जिनके कान नहीं करते उनलोगोंको धिक् है ऐसां कीर्तनका मृदंग सदा कहता है ॥ ५ ॥

पत्र्नैवयदाकरीरविटपेदोषोवसंतस्यकिंनोलू
कोप्यवलोकतेयदिदिवासूर्यस्यकिंदूषणं ॥
वर्षानैवपत्तंतुचातकमुखेमेघस्यकिंदूषणं, यत्पूर्व
विधिनाललाटलिखितंतन्मार्जितुंकःक्षमः ॥६॥

टीका—यदि करीलके वृक्षमें पत्ते नहीं होते तो वसंत

का क्या दोष है? यदि उलूक दिनमें नहीं देखता तो सूर्यका क्या दोष है? वर्षा चातकके मुखमें नहीं पड़ता इसमें मेघका क्या अपराध है? पहिलेही ब्रह्मा ने जो कुछ ललाटमें लिख रखा है उसे मिटानेको कौन समर्थ है? ॥ ६ ॥

सत्संगाङ्गवतिहिसाधुताखलानां साधूनांनहि-
खलसंगतःखलात्वम् ॥ आमोदंकुसुमभवंमृदेव
धत्तेमृदंधनहिकुसुमानिधारयन्ति ॥ ७ ॥

टीका—निश्चय है कि, अच्छेके संगसे दुर्जनों में साधुता आजाती है परन्तु साधुओंमें दुष्टोंकी संगति से असाधुता नहीं आती फूलके गंधको मट्ठी लेलेती है पर मट्ठीके गंधको फूल कभी नहीं धारण करते॥७॥

साधूनांदर्शनंपुण्यंतीर्थभूताहिसाधवः ॥

कालैनफलतेतीर्थसंद्यः साधुसमागमः ॥ ८ ॥

टीका—साधुओंका दर्शनहीं पुण्य है इंसकारण कि, साधु तीर्थरूप है. समयसे तीर्थ फल देता है, साधुओं का संग शीघ्रहीं काम करदेता है ॥ ८ ॥

विप्रास्मिन्ननगरे महान् कथयकस्तालद्रुमाणां
गणः । कोदातारजकोददातिवसनंप्रातर्गृही-
त्वानिशि ॥ कोदक्षः परवित्तदारहरणेसर्वोपि
दक्षोजनः कस्माज्जीवसिहेसखेविषकृमिन्याये
नजीवाम्यहम् ॥ ९ ॥

टीका—हेविप्र! इस नगरमें कौन बड़ा है? ताड़के पेडँका समुदाय, दाता कौन है? धोबी प्रातःकाल वस्त्रलेता हैं रात्रिमें देदेता है, चतुर कौन है? दूसरे के धन और स्त्रीके हरणमें सबही कुशल हैं, तो ऐसे नगरमें आप कैसे जीते हो? हेमित्र! विषका कीड़ा विषही में जीता है वैसेही मैंभी जीताहूँ ॥ ९ ॥

नविप्रपादोदककर्दमानिनवेदशास्त्रध्वनिगर्जितानि ॥ स्वाहास्वधाकारविवर्जितानिश्मशान तुल्यानिगृहाणितानि ॥ १० ॥

टीका—जिनघरोंमें ब्राह्मणके पावोंके जलसे कीचड़ न भया हो और न वेदशास्त्रके शब्दकी गर्जना, और जो गृह स्वाहा स्वधासे रहित हो उनको श्मशानके समान समझना चाहिये ॥ १० ॥

सत्यंमातापितज्ञानं धर्मोभ्रातादयासखा ॥
शांतिः पत्रीक्षमापुत्रःषडेतेममवांधवाः ॥ ११ ॥

टीका—सत्य मेरी माता है, और ज्ञान पिता, धर्म मेरा भाई है, औ, दया मित्र, शांति मेरी स्त्री है, और ज्ञान पुत्र, येही छः मेरे बन्धु हैं ॥ किसी संसारी पुरुषने ज्ञानीको देखकर चाकितहो पूछा कि, संसार में माता, पिता, भाई, मित्र, स्त्री, पुत्र, ये जितनाही अच्छेसे अच्छे हों उतनाही संसार से आनंद होता है तुझको परम आनंदमें “य देखताहूँ तो तुझकोभी

कहीं न कहीं कोई न कोई उनमें से होगा; ज्ञानीने समझा कि, जिस दशा को देखकर यह चाकित है वह दशा क्या सांसारिक कुटुम्बों से हो सकती हैं. इस कारण जिनसे मुझे परम आनंद होता है उन्हीं को इससे कहुं कदाचित् यह भी इनको स्वीकार करे ॥ ११ ॥

अनित्यानिशरीराणिविभवोनैमशाश्वतः ॥
नित्यंसन्निहितोमृत्युःकर्तव्योधर्मसंग्रहः॥१२॥

टीका—शरीर अनित्य है, विभव भी सदा नहीं रहता मृत्यु सदा निकट ही रहती है; इसकारण धर्मका संग्रह करना चाहिये ॥ १२ ॥

निमंत्रणोत्सवाविप्रागावोनवतृणोत्सवः ॥
पत्युत्साहयुताभार्याऽहंकृष्णरणोत्सवः॥१३॥

टीका—निमंत्रण ब्राह्मणों का उत्सव है, और नवीन धास गर्यों का उत्सव है, पति के उत्साह से स्त्रियों को उत्साह होता है, हे कृष्ण! मुझको रणहीं उत्सव है ॥ १३ ॥

मातृवत्परदारांश्चपरद्रव्याणिलोष्टवत् ॥
आत्मवत्सर्वभूतानियःपश्यतिसपश्यति॥१४॥

टीका—दूसरे की ज्ञीको माता के समान, दूसरे के द्रव्यको पत्थर कंकर समान, और अपने समान सब ग्राहियों को जो देखता है वही देखता है ॥ १४ ॥

धर्मेतत्परतामुखेमधुरतादानेससुत्साहिता ।

मित्रेवंचकतागुरौविनयाता चित्तेऽतिगंभीरता ॥
आचारेशुचितागुणेरसिकताशास्त्रेषुविज्ञातृता ।
रूपेसुन्दरताशिवेभजनतात्वद्यस्तिभोराघव १५

टीका—धर्ममें तत्परता, मुखमें मधुरता, दानमें उत्साहता
मित्रके विषयमें निश्चलता, गुरुसे नम्रता, अंतःकरण
में गंभीरता, आचारमें पवित्रता गुणमें रसिकता,
शास्त्रोंमें विशेष ज्ञान, रूपमें सुन्दरता और शिवकी
भक्ति, हेराघव ! ये आपही में हैं ॥ १५ ॥

काष्ठंकल्पतरुः सुमेरुरचलचिंतामणिः प्रस्थरः
सूर्यस्तीव्रकरः शशीक्षयकरः क्षारोह्विरांनि-
धिः कामोनष्टतनुर्बलिर्दितिसुतोनित्यं पशुः
कामगौः नैतांस्तेतुलयामिभोरघुपतेकस्योपमा
दीयते ॥ १६ ॥

टीका—कल्पवृक्ष काठ है, सुमेरु अचल है, चिंतामणि
पत्थर है, सूर्यकी किरण अत्यंत ऊष्ण है चन्द्रमाकी
किरण क्षीण हो जाती है समुद्र खारा है कामकेशरीर
नहीं है बल्कि दैत्य है कामधेनु सदा पशुही है इस
कारण आप के साथ इनकी तुलना नहीं देसक्ते
हेरघुपति ? फिर आपको किसकी उपमा दीजाय ॥ १६ ॥

विद्यामित्रं प्रवासे च भार्या मित्रं गृहे षुर्व ॥
व्याधिस्थस्यौषधं मित्रं धर्मो मित्रं मृतस्य च ॥ १७ ॥

टीका—प्रवास में विद्या हित करती है, घरमें स्त्री मित्र है, रोगग्रस्थ पुरुषका हित औषधि होती है, और धर्म सर्वका उपकार करता है ॥ ३७ ॥

**विनयं राजपुत्रेभ्यः पंडितेभ्यः सुभाषितं म् ॥
अनृतं वृत्तकारेभ्यः स्त्रीभ्यः शिक्षेतकैतवम् ॥१८॥**

टीका—सुशीलता राजाके लड़कों से, प्रियबचन पंडितोंसे असत्य जुआडियोंसे और छल स्त्रियोंसे सीखना चाहिये ॥ १८ ॥

**अनालोक्य व्ययं कर्त्ता इनाथः कलह प्रियः ॥
आतुरः सर्वक्षेत्रे षुनरः शीघ्रं विनश्यति ॥ १९ ॥**

टीका—बिनाविचारे व्ययकरनेवाला, सहायक के न रहने परभी कलहमें प्रीति रखनेवाला और सब जातिकी स्त्रियोंमें भोग केलिये व्याकुल होनेवाला पुरुष शीघ्रही नष्ट को प्राप्त होता है ॥ १९ ॥

**नाहारं चिंतयेत्प्राङ्गो धर्ममेकं हिंचितयेत् ॥
आहारो हिमनुष्याणां जन्मना सहजायते ॥ २० ॥**

टीका—पंडितको आहारकी चिंता नहीं करनीचाहिये एक धर्मको निश्चयसे शोचना चाहिये, इस हेतु कि, आहार मनुष्योंको जन्मके साथही उत्पन्न होता है ॥ २० ॥

**धनधान्यप्रयोगेषु विद्या संग्रहणेतथा ॥
आहारे व्यवहारे चत्यकलज्जः सुखी भवेत् ॥ २१ ॥**

टीका—धनधान्यके व्यवहार करनेमें, वैसेही विद्या के पढ़ने पढ़ानेमें, आहारमें और राजाकी सभामें किसी के साथ विवाद करनेमें जो लज्जाको छोड़े रहेगा वह सुखी होगा ॥ २१ ॥

**जलबिंदुनिपातेनक्रमशःपूर्यतेघटः ॥
सहेतुःसर्वविद्यानांधर्मस्यचधनस्यच ॥ २२ ॥**

टीका—क्रम क्रम से जलके एक एक बूँदके गिरने से घड़ा भरजाता है, यही सब विद्या धर्म और धनकाभी कारण है ॥ २२ ॥

**वयसःपरिणामेऽपियःखलःखलएवसः ॥
संपक्षमपिमाधुर्यनोपयातीद्रवारुणम् ॥ २३ ॥**

टीका—वयक परिणामपरभी जो खल रहता है सो खलही बना रहता है अत्थन्त पकीभी कड़वी लौकी मीठी नहीं होती ॥ २३ ॥

इतिवृद्धचाणक्ये द्वादशोऽध्यायः ॥

— : x 0 + : —

अथ ब्रयोदशोऽध्यायः १३

**मुहूर्तमपिजीवेच्चनरःशुक्लेनकर्मणा ॥
नकलपमपिकष्टेनलोकद्रयविरोधिना ॥ १ ॥**

टीका—उत्तम कर्मसे मनुष्योंको मुहूर्तभरका जीवा

भी श्रेष्ठ हैं दोनोंलोगोंके विरोधी दुष्टकर्मसे कल्पभर काभी जीना उच्चम् नहीं है ॥ १ ॥

गतेशोकोनकर्तव्योभविष्यनैवचितयेत् ॥
वर्तमानेनकालेनप्रवर्तन्तेविचक्षणाः ॥ २ ॥

टीका—गईवस्तुका शोक, और भावीकी चिंता नहीं करनी चाहिये, कुशल लोग वर्तमान कालके अनुरोध से प्रवृत्त होते हैं ॥ २ ॥

स्वभावेनहितुष्यन्तिदेवाःसत्पुरुषाःपिता ॥
ज्ञातयःस्नानपानाप्यांवाक्यदानेनपंडिताः॥३॥

टीका—निश्चय हैंकि, देवता सत्पुरुष, और पिता ये प्रकृतिसे संतुष्ट होते हैं पर बन्धु स्नान और पानसे और पण्डित प्रियवचनसे संतुष्ट होते हैं ॥ ३ ॥

आयुःकर्मचवित्तंचविद्यानिधनमेवच ॥
पंचेतानिचसृज्यन्तेगर्भस्थस्यैवदेहिनः ॥ ४ ॥

टीका—आयुर्दाय, कर्म, विद्या धन और मरण ये पांच जब जीव गर्भमें रहता है उसीसमय सिरजे जाते हैं ॥ ४ ॥

अहोवतविचित्राणिचरितानिमहात्मनाम् ॥
लक्ष्मीतृणायमन्यन्तेतद्वारेणनमंतित्व ॥ ५ ॥

टीका—आश्चर्य है, कि, महात्माओंके विचित्र

चरित्र हैं लक्ष्मीको तृणसमान मानते हैं यदि मिल-
जाती है तो उसके भारसे नम्र होजाते हैं ॥ ४ ॥

यस्यस्नेहोभयंतस्यस्नेहोदुःखस्यभाजनं ॥
स्नेहमूलानिदुखानितानित्यकृत्वावसेत्सुखमृद्

टीका—जिसको किसीमें प्रीति रहती है उसीको भय
होता है स्नेहही दुःखका भाजन है और सब दुःखका
कारण स्नेहही है इसकारण उसे छोड़कर सुखी
होना उचित है ॥ ५ ॥

अनागतविधाताच्चप्रत्युत्पन्नमतिस्तथा ॥
द्वावेतौसुखमेधेतेयद्विषयोविनश्यति ॥ ६ ॥

टीका—आनेवाले दुःखके पहिलेसे उपाय करने
वाला और जिसकी बुद्धिमें विपत्ति आजानेपर
शीघ्रही उपायभी आजाता है ये दोनों सुखसे बढ़ते
हैं और जो शोचता है कि, भाग्यवशसे जो होने-
वाला है सो अवश्य होगा वह विनष्ट होजाता है ॥ ७ ॥

राज्ञिधर्मिणिधर्मिष्ठाःपापेपापाःसमेसमाः ॥
राजान्मनुकर्तन्तेयथाराजातथाप्रजाः ॥ ८ ॥

टीका—यदि धर्मात्मा राजा होतो प्रजाभी धर्मिष्ठ
होती है यदि पापी हो तो पापी होती है सब प्रजा
राजाके अनुसार चलती हैं ऐसा राजा वैसी प्रजाभी
होती है ॥ ८ ॥

जीवन्तं मृतन्मन्येदेहिनं धर्मवाजतम् ॥
मृतोधर्मेण संयुक्तो दीर्घजीवीन संशयः ॥ ९ ॥

टीका—धर्मरहित जीतेको मृतकके समान समझता हूँ निश्चय है कि, धर्मयुत मराभी पुरुष चिरंजिवी ही हौं।

धर्मार्थकाममोक्षाणां यस्य कोऽपि न विद्यते ॥
अजागलस्तनस्येवतस्य जन्मनि रथकम् ॥ १० ॥

टीका—धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन्हौंमें से जिसको एकभी नहीं रहता, बकरीके गलके स्थनके समान उसका जन्म निरर्थक है ॥ १० ॥

दद्यमानः सुतीवैणानीचाः परयशोऽग्निना ।
आशक्तास्तत्पदं गन्तुं ततो निंदां प्रकुर्वते ॥ ११ ॥

टीका—दुर्जन दुसरेकी कीर्तिरूप दुःसह अग्निसे जल-
कर उसके पदकों नहीं पाते इसलिये उसकी निन्दा
करने लगते हैं ॥ ११ ॥

बन्धाय विषयासंगोभुक्त्यै निर्विषयं मनः ॥
मनएव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः ॥ १२ ॥

टीका—विषयमें आशक्त मन बन्धका हेतु है विषय
से रहित सुक्तिका, मनुष्योंके बन्ध और मोक्षका कारण
मनही है ॥ १२ ॥

देहाभिमानेगलितेज्ञानेनपरमात्मनः ॥
यत्रयत्रमनोयातितत्रत्रमाधयः ॥ १३ ॥

टीका—परमात्माके ज्ञानसे देहके अभिमानके नाश होजाने पर जहां जहां मन जाता है वहां वहां समाधि ही है ॥ १३ ॥

ईपिसतंमनसः सर्वकस्यसंपद्यतेसुखम् ॥
दैवायत्तंयतःसर्वतस्मात्सन्तोषमाश्रयेत् ॥ १४ ॥

टीका—मनका अभिलाषित सब सुख किसको मिलता है, जिसकारण सब दैवके वश हैं इससे संतोष पर भरोसा करना उचित है ॥ १४ ॥

थथाधेनुसहस्रेषुवत्सोगच्छतिमातरम् ॥
तथायच्चकृतंकर्मकर्तारमनुगच्छति ॥ १५ ॥

टीका—जैसे सहस्रों धेनुके रहते बछरा माताहीके निकट जाता है; वैसे ही जो कुछ कर्म किया जाता सो कर्ताहीको मिलता है ॥ १५ ॥

आनवस्थितकार्यस्यनजनेनवनेसुखम् ॥
जनोदहतिसंसर्गाद्वनंसङ्गविवर्जनात् ॥ १६ ॥

टीका—जिसके कार्यकी स्थिरता नहीं रहती वह न जनमें और न बनमें सुख पाता है. जन उसको संसर्ग से जराता है और वन संगके त्यागसे जराता है ॥ १६ ॥

यथाखात्वाखनित्रेणभूतलेवरिविन्दति ॥
तथागुरुगतांविद्यांशुश्रूषरधिगच्छति ॥ १७ ॥

टीका—जैसे खननेके माध्यमसे खनके नर पाताल के जलको पाता है वैसेही गुरुगत विद्याको सेवक शिष्य पाता है ॥ १७ ॥

कर्मायत्तंफलंपुंसांबुद्धिःकर्मानुसारिणी ॥
तथापिसुधियश्चार्याःसुविचार्यवकुर्वते ॥ १८ ॥

टीका—यद्यपि फल पूरुषके कर्मके आधीन रहता है और बुद्धिभी कर्मक अनुसारही चलतीहै तथापि विवेकी महात्मा जोग विचारहीके काम करते हैं ॥ १८ ॥

सन्तोषस्थिषुकर्तव्यःस्वदारेभोजनेधने ॥
निषुचैवनकर्तव्योऽध्ययनेजपदानयोः ॥ १९ ॥

टीका—स्थी, भोजन और धन इन तीनमें सन्तोष करना उचित है, पढ़ना, तप और दान इन तीनमें संतोष कभी नहीं करना चाहिये ॥ १९ ॥

एकाक्षरप्रदातारिंयोगुरुन्नाभिवंदते ॥
न्वानयोनिशतंभुक्त्वाचाण्डालेष्वभिजायते २०

टीका—जो एक अक्षरभी देनेवाले गुरुकी वन्दना नहीं करता वह कुत्तेकी सौ योनिको भोगकर चांडालों में जन्मता है ॥ २० ॥

युगांते प्रचलेन्मेरुः कल्पांते सप्तसागराः ॥
साधवः प्रतिपन्नार्थान्न चलंति कदाचन ॥२१॥

टीका—युगके अन्तमें सुमेरु चलायमान होता है और कल्पके अंतमें सातों सागर, परन्तु साधुलोग स्वीकृत अर्थसे कभी नहीं विचलते ॥ २१ ॥

॥ इति श्रीबृहद्बाणक्ये त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

अथ चतुर्दशोऽध्यायः १४

एथिन्यात्रीणि रत्नानि जलमन्नं सुभाषितम् ॥
मूढैः पाषाणखंडेषु रत्नसंख्याविधीयते ॥ १ ॥

टीका—पृथ्वीमें जल अन्न और प्रियबंचन ये तीनहीं रत्न हैं. मूढँोंने पाषाण के टुकडँोंमें स्तनकी गिनती की है ॥ १ ॥

आत्मापराधवृक्षस्य फलान्येतानि देहिनाम् ॥
दारिद्र्यरोगदुःखानि बंधनव्यसनानि च ॥ २ ॥

टीका—जीवोंकों अपने अपराधरूप वृक्षके दरिद्रता, रोग, दुःख, बंधन और विपत्ति ये कल होते हैं ॥ २ ॥

पुनर्वित्तं पुनर्मित्रं पुनर्भार्या पुनर्मही ॥
एतत्सर्वं पुनर्लक्ष्यं नशरीरं पुनः पुनः ॥ ३ ॥

टीका—धन, मित्र, स्त्री और पृथक्षी ये फिर मिलते हैं, परन्तु मनुष्यशरीर फिर फिर नहीं मिलता ॥ ३ ॥

**बहूनाचैवसत्त्वान्नासमवायोरिपुंजयः ॥
वर्षाधाराधरोमेघस्तृणैरपिनिवार्यते ॥ ४ ॥**

टीका—निश्चय है कि बहुतजनोंका समुदाय शत्रुको जीत लेता है. तृणसमूहभी वृष्टिकी धाराके धरने वाले मेघका निवारण करता है. ॥ ४ ॥

**जलेतैलंखलेगुह्यंपात्रेदानंमनामपि ॥
प्राङ्गेशाखंस्वयंयातिविस्तारंवस्तुशक्तिः॥५॥**

टीका—जलमें तैल, दुर्जनमें गुप्तवार्ता, सुपात्रमें दान और बुद्धिमानमें शास्त्र ये थोड़ेभी हों तो भी वस्तुकी शक्तिसे अपने अपने आपसे, विस्तारको प्राप्त होजाते हैं ॥ ५ ॥

**धर्माख्यानेऽमशानेचरोगिणायामतिर्भवेत् ॥
सासर्वदैवतिष्ठेत्वेत्कोनमुच्येत्वंधनात् ॥ ६ ॥**

टीका—धर्मविषयक कथाके, शमशानपर और रोगियों को जो बुद्धि उत्पन्न होती है वह यदि सदा रहती तो कौन बन्धनसे मुक्त न होता ॥ ६ ॥

**उत्पन्नपश्चात्तापस्यबुद्धिर्भवतियादृशी ॥
तादृशीयदिपूर्वस्यात्कस्यनस्यान्महोदयः॥७॥**

टीका—निंदित कर्म करनेके पश्चात् पछतानेवाले
पुरुषको जैसी बुद्धि उत्पन्न होती है वैसी बुद्धि यदि
पहले होती तो किसको बड़ी समृद्धी न होती ॥ ७॥

दानेतपसिशौर्येवाविज्ञानेविनयेनये ॥
विस्मयोनहिकर्तव्योबहुरत्नावसुंधरा ॥ ८ ॥

टीका—दानमें, तपमें शूरतामें, विज्ञतामें, सुशीलतामें,
और नीतिमें विस्मय नहीं करना चाहिये इस कारण
कि पृथ्वीमें बहुत रत्न हैं ॥ ८ ॥

दूरस्थोऽपिनदूरस्थोयोयस्यभनसिस्थितः ॥
योयस्यहृदयेनास्तिसमीपस्थोऽपिदूरतः ॥ ९॥

टीका—जो जिसके हृदयमें रहता है वह दूरभी हो
तौभी वह दूर नहीं जो जिसके मनमें नहीं है वह
समीपभी हो तौभी वह दूर है ॥ ९ ॥

यस्माच्चप्रियमिच्छेत्तुतस्यब्रुयात्सदाप्रियम् ॥
व्याधोमृगवधंगंतुंगीतंगायतिसुस्वरम् ॥ १० ॥

टीका—जिससे प्रियकी वांछा हो उससे सदा प्रिय
बोलना उचित है, व्याध मृगके वधके निमित्त मधुर
स्वरसे गीत गाता है ॥ १० ॥

अत्यासन्नाविनाशायदूरस्थानफलप्रदाः ॥
सेव्यतामध्यभागेनराजावह्निर्गुरुःस्त्रियः ॥ ११ ॥

टीका—अत्यंत निकट रहने पर विनाश के हेतु होते हैं, दूर रहने से फल नहीं देते, इस हेतु राजा अग्नि गुरु और खीं इनको मध्यम अवस्था से सेवना कर्महिते ॥ ११ ॥

**अग्निरापःस्त्रियोमूर्खःसर्पोराजकुलानिच् ॥
नित्यंयत्नेनसेव्यानिसद्यःप्राणहराणिषट् ॥१२॥**

टीका—आग, जल, खीं, मूर्ख, सर्प और राजा के कुल ये सदा सावधानता से सेवने के योग्य हैं ये छः शीत्र प्राण के हरनेवाले हैं ॥ १२ ॥

**सजीवतिगुणायस्ययम्यधर्मःसजीवति ॥
गुणधर्मविहीनस्यजीवितंनिष्प्रयोजनम् ॥१३॥**

टीका—वही जीता है जिसके गुण हैं, और वही जीता है जिसका धर्म है, गुण और धर्म से हीन पुरुष का जीना व्यर्थ है ॥ १३ ॥

**यदीच्छसिवशीकर्तुंजगदेकेनकर्मणा ॥
पुरापंचदशास्येऽयोगांचरंतीनिवारय ॥ १४ ॥**

टीका—जो एक ही कर्म से जगत को बश किया चाहते हों तो पहिले पन्द्रहों के मुख से मन को निवारण करो, तात्पर्य यह है कि, आँख, कान, नाक, जीभ, त्वचा ये पांचों ज्ञानेन्द्रिय हैं, मुख, हाथ, पांत्र, लिंग, गुदा, ये पांच कर्मेन्द्रिय हैं, रूप शब्द रस गन्ध

स्पर्श ये पांच ज्ञानेन्द्रियोंके विषय हैं इन पन्द्रहोंसे
मनको निवारण करना उचित है ॥ १४ ॥

प्रस्तावसदृशंवाक्यंप्रभावसदृशंप्रियम् ॥
आत्मशक्तिसमंकोप्योजानातिसपण्डितः ॥ १५

टीका—प्रसंगके योग्य वाक्य, प्रकृतिके सदृश प्रिय
और अपने शक्तिके अनुसार कोपको जो जानता
हैं वहाँ बुद्धिमान् है ॥ १५ ॥

एकएवपदार्थस्तुत्रिधाभवतिर्विक्षितः ॥
कुण्ठपं कामिनीमांसंयोगिभिः कामिभिः
श्वभिः ॥ १६ ॥

टीका—एकही देहरूप वस्तु तीनप्रकारकी देख
पड़ती है योगीलोग उसको अतिनिन्दित मृतक
रूपसे, कामीपुरुष कांतारूपसे कुत्ते मांसरूपसे
देखते हैं ॥ १६ ॥

सुसिद्धमौषधंधर्मगृहच्छिद्रंचमैथुनम् ॥
कुमुकंकुश्रुतंचवमातिमान्नप्रकाशयेत् ॥ १७ ॥

टीका—सिद्ध औषध, धर्म अपने घरका दोष, मैथुन
कुअन्नका भोजन और निंदित बचन इनका प्रकाश
करना बुद्धिमानको उचित नहीं है ॥ १७ ॥

तावन्मानेननीयन्तेकोकिलैश्वववासराः ॥
यावत्सर्वजनानन्ददायिनीवाक् प्रवर्तते ॥ १८ ॥

टीका—तबलौं कोकिल मौन साधनसे दिन बिताती है जबलौं सबजनोंको आनन्द देनेवाली वाणीका प्रारंभ बहीं करती है ॥ १८ ॥

**धर्मधनं च धान्यं च गुरोर्वचनमौषधम् ॥
सुगृहीतं च कर्तव्यमन्यथा तु न जीवति ॥ १९ ॥**

टीका—धर्म, धन, धान्य, गुरुका बचप्न और औषध यदि यह सुगृहीत हों तो इनको भली भाँतिसे करना चाहिये जो ऐसा नहीं करता वही नहीं जीता ॥ १९ ॥
**त्यजदुर्जनसंसर्गमजसाधुसमागमम् ॥
कुरु पुण्यमहोरात्रं स्मरनित्यमनित्यतः ॥ २० ॥**

टीका—खलका संग छोड़, साधूकी संगतिका स्वीकार कर, दिनरात पुण्य क्रिया कर और ईश्वरका नित्यस्मरण कर इसकारण कि संसार अनित्यहै ॥ २० ॥

इति चतुर्दशोऽध्याय ॥ १४ ॥

अथ पंचदशोऽध्यायः । १५ ।

**यस्यचित्तं द्रवीभूतं कृपया सर्वजन्तुषु ॥
तस्य ज्ञानेन मोक्षेण किं जटाभस्मलेपैनः ॥ १ ॥**

टीका—जिसका चित्त सब प्रशियाँपर दयासे पिघल जाता है उसको ज्ञान से, मोक्षसे, जटासे और विभूति के लेपनसेक्या है ॥ १ ॥

एकमेवाक्षर्यस्तुगुरुःशिष्यंप्रबोधयेत् ॥
पृथिव्यानास्तितद्वयंयदत्त्वाचानृणोभवेत् ॥ २ ॥

टीका—जो गुरु शिष्यको एकभी अक्षरका उपदेश करता है पृथिवीमें ऐसा द्रव्य नहीं है जिसको देकर शिष्य उससे उत्तीर्ण होय ॥ २ ॥

खलानांकण्टकानांचद्विवैवप्रतिक्रिया ॥
उपानन्मुखभंगोवादूरतोवाविसर्जनम् ॥ ३ ॥

टीका—खल और कांटा इनका दोई प्रकारका उपाय है जूतासे मुखका तोड़ना वा दूरसे त्याग देना ॥ ३ ॥

कुचैलिनंदन्तमलोपधारिणंबह्वाशिनंनिष्टुरभा
षिणांच ॥ सूर्योदयेचास्तमितेश्यानंविमुंचति
श्रीर्यदिचक्रप्राणिः ॥ ४ ॥

टीका—मलिन वस्त्रवालेको, जो दांतोंके मलको दूर नहीं करता उसको, बहुत भोजन करनेवालेको, कटु भाषीको, सूर्यके उदय और अस्तके समयमें सोने वालेको लक्ष्मी छोड़देती है चाहे वह विष्णु भी हो ॥ ४ ॥

त्यजन्तिमित्राणिधैर्विहीनंदाराश्चभूत्याश्चसुह
जनाश्च ॥ तंचार्थवंतंपुनराश्रयतेह्यथोहिलोके
पुरुषस्यवंधुः ॥ ५ ॥

टीका—मित्र, स्त्री, सेवक, और बन्धु ये धनहीन

पुरुषको छोड़देते हैं और वही पुरुष येदि अनी हो जाता है तौं फिर उसीका आश्रय करते हैं अर्थात् धनहीं लौकमें बन्धु है ॥ ५ ॥

अन्यायोपार्जितं दृढं दशवर्षाणि तिष्ठति ॥
प्राप्तएकादशो वर्षे समूलं च विनश्यति ॥ ६ ॥

टीका—अनीतिसे अर्जित धन दस वर्षपर्यंत ठहरता है, ग्वारहवें वर्षके प्राप्त होनेपर मूलसंहित नष्ट हो जाता है ॥ ६ ॥

अयुक्तं स्वामिनो युक्तं युक्तं नीचस्य दूषणम् ॥
असृतं राहवे सृत्युर्विषं शंकरभूषणम् ॥ ७ ॥

टीका—अयोग्यभी वरतु सर्वथको योग्य होती है और योग्यभी दुर्जनको दूषण, असृतने राहुको मृत्यु दिया, विषभी शंकर को भूषण हुवा ॥ ७ ॥

तज्जोजनं यद्विजभुक्तशेषं तत्सौदृदं यत्तक्रियते प
रस्मिन् ॥ साप्राज्ञतायानकरोति पापं दं भर्मविना
यः क्रियते सधर्मः ॥ ८ ॥

टीका—वही भोजन है जो ब्राह्मणके भोजनसे वचा है वही मित्रता है जो दुसरेमें कीजाती है वही बुद्धिमानी है जो पाप नहीं करती और जो विना दं भर्मके किया जाता है वही भर्म है ॥ ८ ॥

**मणिलुंठतिपादायेकाचःशिरसिधार्यते ॥
क्रयविक्रयवेलायाकाचःकाचोमणिर्मणिः॥१॥**

टीका—मणि पांव के आगे लौटती हो, और काच शिरपरभी रक्खा हो परन्तु क्रयविक्रय के समयमें कांच कांचही रहता है और मणि मणिही है ॥ १ ॥

**अनंतशास्त्रंबहुलाश्वविद्या अल्पश्वकालोबहु
विद्वताच ॥ यत्सारभूतंतदुपासनीयंहंसोयथा
क्षीरमिवांशुमध्यात् ॥ १० ॥**

टीका—शास्त्र अनंत है और विद्या बहुत, काल थोड़ा है, और विद्व बहुत हैं इसकारण जो सार है उसको लेलेना उचित हैं, जैसे हंस जलके मध्यसे दूधको लेलेता है ॥ १० ॥

**दुरागतंपथिश्रांतंदृथाचगृहमागतम् ॥
अनर्चयित्वायोभुक्तेसवैचांडालउच्यते ॥११॥**

टीका—दूरसे आयेको, पथसे थकेको और निर्धक गृहपर आयेको बिनापूछे जो साता है वह चांडालही गिना जाता है ॥ ११ ॥

**पठंतिचतुरोवेदान्धर्मशास्त्राण्यनेकशः ॥
आत्मानंनैवजानन्तिदर्वीपाकरसंयथा ॥१२॥**

टीका—चारों वेदों और अनेक धर्मशास्त्र पढ़ते हैं

परन्तु आत्माको नहीं जानते जैसे करद्धी पाकके रसको ॥ ५२ ॥

धन्याद्विजमयीनांकाविपरीताभवार्णवे ॥

तरंत्वधोगताःसर्वेऽपरिस्थाःपतंत्यधः ॥१३॥

टीका—यह ब्राह्मणरूप नाव धन्य है संसाररूप समुद्र में इसकी उल्टीही रीति है; उसके नीचे रहनेवाले सब तरते हैं और ऊपर रहनेवाले नीचे गिरते हैं। अर्थात् ब्राह्मणसे जो नम्र रहता है वह तरजाता है और जो नम्र नहीं रहता है वह नरकमें गिरता हा॑ ॥१३॥

अयमसृतनिधानं नायकोऽप्यौषधीनाम् असृत
मयशरीरः कांतियुक्तोऽप्रचन्दः ॥ ॥ भवति
विगतराइमस्तुलं प्राप्यभानोः परसदननिवृष्टः
कोलघुत्वं नयाति ॥ १४ ॥

टीका—असृतका घर औषधियोंका अधिपति जिसका शरीर असृतमय और शोभायुतभी चंद्रमा सूर्यके मंडलमें जाकर निस्तेज होता है दूसरेके धूरमें पैठकर कौन लघुता नहीं पाता ॥ १४ ॥

आलिरथं नलिनीदलमध्यगः कमलिनीमंकरं दम
दालसः ॥ विधिवशोत्परदेशमुपागताकुटजपुष्पे
रसं बहुष्मन्यते ॥ १५ ॥

टीका—यह भौंरा जब कमलिनीके पत्तोंके मध्य था

तत्र कमलिनीके फूलके रससे आलसी बेता रहताथा;
अब दैववरासे परदेशमें आकर तोरैयाके फूलको बहुत
समुझता है ॥ १५ ॥

पीतः क्रुष्णनतातश्चरणतलहतोवल्लभोयेनरोषा
दावाल्पाद्विप्रवर्यैः स्ववदनविवरेधार्यतंवैरि-
णीमेत्या। गेहंमेछेदयन्तिप्रतिदिवसमुमाकांत
पूजानिमित्तं तस्मात् खिन्नासंदाहंद्विजकुलनि-
लयंनाथयुक्तंयजामि ॥ १६ ॥

टीका—जिसने रुष्टहोकर भेरे पिताको पीड़ाला और
जिसने क्रोधके मारे पांवसे भेरे कन्तको मारा, जो श्रेष्ठ
ब्राह्मण, बैठे सदालंडकपनसे लेकर मुखविवरमें भेरी
वैरिणीको रखते हैं और प्रतिदिन पार्वतीके पति की
पूजाके निमित्त भेरे गृहको काटते हैं हैनाथ ! इससे
खेद पाकर ब्राह्मणोंके घरको सदा छोड़ रहती हूँ
बंधनानिखलुसांतिबहूनिप्रेमरज्जुकृतबन्धन
मन्यत् तदारुभेदानिपुणोऽपिषद्ग्रन्थिनिष्क्रियो
भवतिपंकजकोशे ॥ १७ ॥

टीका—बंधनतो बहुत है; परंतु श्रीतिकी रसीका
बन्धन औरही है, काठके छेदनेमें कुशलभी भाँरा
कमलके कोशमें निर्व्यापार होजाता है ॥ १७ ॥
छिन्नोपिचंदनतर्नजंहातिगंधं दृढोऽपिवारण

पतिर्नजहातिलीलाम् ॥ यंत्रार्पितोमसुरातांन् ॥
 जहातिचेष्टुः क्षीणो पिनत्यजितशीलगुणान्कु
 लीनः ॥ १८ ॥

टीका—काटा चन्दनका वृक्ष गन्धको त्याग नहीं
 देता। बृद्धाभीं गजपति। विज्ञासको नहीं छोड़ता। कोलहू
 में पेरीभी। उत्तर मधुरता नहीं छोड़ती। दरिद्रभी
 कुलीन सुरीलता। आदिगुणोंका त्याग नहीं करता। ३८॥
 उव्याकोऽपि महीधरो लघुतरो दोष्याधृतो लीलया।
 तेन त्वं दिवि भूत लेच विदितो गोवर्दनो छारकः ॥
 त्वां त्रैलोक्यधरं वहामि कुच पोरये न तद्विषयते ॥
 किं वाकेशवभाषणे न बहुना पुण्यैर्यशोलभ्यते ॥१९॥

टीका—पृथ्वी पर किसी अत्यंत हल्के पर्वतोंको
 अनाशास से बाहुदोंके ऊपर धारण करने से आप
 स्वर्ग और पृथ्वीतलमें सर्वदा गोवर्दनधारी कहलाते
 हैं। तीनों लोकोंके धरने वाले। आपको केवल कुछों
 के अप्रभागमें धारण करती हूँ। यह कुछभी नहीं
 गिनाजाता है। हेकेशव। बहुत कहने से क्या॥
 पुण्योंसे यश मिलता है ॥ १९ ॥

इति पंचदशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

अथ शोदशोऽध्यापः ॥

न ध्यातं पदमीऽवरस्य विधिवत्संसारविच्छिन्तये
स्वर्गद्वारकपाटपाटनपटुर्धर्मोऽपि नोपार्जितः ॥
नारीपीनपयोधरोहयुगुलं स्वप्रेपिना लिंगितं
मातुः केवलमेवयौवनवनच्छेदं कुठारावयम् ॥१
टीका- संसार से मुक्त होने के लिये विधि से ईश्वर के पदका ध्यान मुझ से न हुआ स्वर्गद्वारके कपाट के तोड़ने में समर्थ धर्म का भी अर्जन न किया और स्त्री के दोनों पीलस्तन और जंघाओं को आलिंगन स्वप्न में भी न किया मैं माताके युवापन रूप वृद्धके केवल काटने में कुन्हाड़ी उत्पन्न हुआ ॥ १ ॥

जल्पं तिसर्दमन्येन पश्यंत्यन्यं सविभ्रमाः ॥
इदयेचिंतयंत्यन्यं लक्ष्मीणामेकतोरतिः ॥ २ ॥

टीका-भाषण दूसरे के साथ करती हैं, दूसरे को विलास से देखती हैं और हृदय में दूसरे ही की लिन्ता करती है लियों की प्रीति एकमें नहीं रहती ॥ २ ॥
यो मोहान्मन्यते मूढोरके यं मयिका मिनी ॥
सतस्यावशगो भूत्वा नृत्येकीडाश कुंतवत् ॥ ३ ॥

टीका-जो मुख्य अविवेक से समझता है कि, यह कामिनी 'येर' ऊपर प्रेम करती है वह उसके वश होकर लोह के पहाड़ी के समान नाशा करता है ॥ ३ ॥

कोऽर्थान्प्राप्यनगर्वितोविषयिणः कस्यापदो
स्तंगताः खीभिः कस्यनखडितंभुविमनः को
नामराजप्रियः ॥ ५ ॥ कः कालस्पनगचरत्वमग
मत्कोऽर्थांगतोगौरवं कोवादुर्जनदुरुणेषुपतितः
क्षामेणयातः पथि ॥ ५ ॥

टीका—धन्त पाकर गर्वी कौन न हुवा, किस विषयी
की विपत्ती नष्ट हुई, पृथ्वीमें किसके मनको छियों
ने खणिडत न किया, राजा को प्रिय कौन हुवा, काल
के वश कौन नहीं हुवा, किस याचक ने गुरुता पाई,
दुष्ट की दुष्टतामें पड़कर संसार के पंथमें कूरलतासे
कौन गया ॥ ५ ॥

ननिर्मिताकेन नदृष्टपूर्वा नश्रूयते हेममयी
कुरंगी ॥ तथापितृष्णा रघुनंदनस्य विनाश
काले विपरीतबुद्धिः ॥ ५ ॥

टीका—सोने की मृगी न पाहिले किसीने रची, न
देखी और न किसीको सुन पड़ती है तो भी रघुनंदन
की तृष्णा उसपर हुई, विनाशके समय बुद्धि विपरीत
होजाती है ॥ ५ ॥

गुणरूपतायांतिनच्चरासनस्थिताः ॥
प्रसादशिखरस्थोऽपिकाकःकिंगरुडायते ॥

प्राणी मुण्डोंसे उत्तमता पाता है ऊचे आसनपर

बैठकर नहीं, कोठोंके ऊपर के भागमें बैठा कौवा
क्या गरुड़ होजाता है ॥ ६ ॥

गुणाः सर्वत्र पूज्यं तेन महत्योऽपि संपदः ॥
पूर्णं दुःकिं तथा वंद्यो निष्कलं कोयथाकृशः ॥ ७ ॥

टीका—सब स्थानों से गुण पूजे जाते हैं बड़ी संपत्ति
नहीं, पूर्णमाका पूर्णभी चंद्रमा क्या वैसा वंदित
होता है जैसा बिना कलंकके द्वितीयाका दुर्बलभी ॥ ७ ॥

परस्तु त गुणो यस्तु निर्गुणो पि गुणीभवेत् ॥
इङ्ग्रोऽपि लघुतां याति स्वयं प्रख्या पितैर्गुणैः ॥ ८ ॥

टीका—जिसके गुणोंको दूसरे लोग वर्णन करते हैं
वह निर्गुणभी होतो गुणवान् कहा जाता है, इन्द्रभी
यदि अपने गुणों की आप प्रशंसा करे तो उससे
लघुता पाता है ॥ ८ ॥

विवेकिनमनुप्राप्ता गुणाशांतिमनोऽन्ताम् ॥
सुतरां रत्नमाभाति चामीकरनि योजितम् ॥ ९ ॥

टीका—विवेकीको पाकर गुण सुंदरता पाते हैं जब रत्न
सोनेमें जड़ा जाता है तब अत्यंत सुंदर दीख पड़ता है ॥ ९ ॥

गुणः सर्वज्ञतुल्योऽपि सीदत्येको निराश्रयः ॥
अनर्थमापि माणिक्यं हेमाश्रयमपेक्षते ॥ १० ॥

टीका—गुणोंसे ईश्वरके संदृशभी निरालंब अकेला

पुरुष दुख पाता है अमोलभी मार्गिक्य सोनाके
आलंबकी अर्थात् उस में जड़े जाने की अपेक्षा
करता है ॥ १० ॥

अतिक्रेशोनेये अर्था धर्मस्यातिक्रमेणतु ॥
शत्रूणां प्राणिपातेन ये अर्थामाभवं तुमे ॥ ११ ॥

टीका—अत्यंत पीड़ासे धर्मके त्यागसे और वैरियों
की प्रणालिसे जो धन होते हैं सो मुझको नहीं ॥ ११ ॥
किंतयाक्रियतेलक्ष्म्या यावधूरिवकेवला ॥
यातुवेद्येव सामान्या पथिकैरपि भुज्यते ॥ १२ ॥

टीका—उस संपत्तिसे लोग क्या कर सकते हैं जो
वधू के समान असाधारण है जो वेश्याके समान सर्व
साधारण हो वह पथिकोंके भी भोगमें आसक्ती है ॥ १२ ॥

धनेषु जीवितव्येषु स्त्रीषु चाहारकर्मसु ॥
अतृप्ताः प्राणिनः सर्वे यातायास्यं तियांतिच ॥ १३ ॥

टीका—धनमें जीवन में खियोंमें और भोजनमें अतृप्त
होकर सब प्राणिगये और जायंगे ॥ १३ ॥

क्षीयं ते सर्वदानानि यज्ञहोमवलिक्रियाः ॥
न क्षीयते पात्रदानमभयं सर्वदेहिनाम् ॥ १४ ॥

टीका—सब दान, यज्ञ, होम, वलि ये सब नष्ट
हो जाते हैं सत्पात्र को दान और सब जीवोंको अभय
दान ये क्षीण नहीं होते ॥ १४ ॥

तृणं लघुतृणात् लूलं तूलादपिचयाचकः ॥
वायुनाकिं ननीतोऽसौ मामयं याचयिष्यति ॥१५॥

टीका—तृण सबसे लघु होता है तृणसे रुई हल्की होती है रुईसे भी याचक तो उसे वायु क्यों नहीं उड़ा ले जाती वह समझती है कि यह मुझसे भी माँगेगा ॥ १५ ॥

वरं प्राणपरित्यागो मानभंगेन जीवनात् ॥
प्राणत्यागेक्षणं दुःखं मानभंगेदिनेदिने ॥१६॥

टीका—मानभंगपूर्वक जीनेसे प्राणका त्याग श्रेष्ठ है प्राण त्यागके समय क्षणभर दुःख होता है मान के नाश होनेपर दिन दिन ॥ १६ ॥

प्रियवाक्यप्रदानेन सर्वेतुष्यं तिजन्तवः ॥
तस्मात्तदेव वक्तव्यं वचनैकिं दरिद्रिता ॥ १७॥

टीका—मधुर बचनके बोलनेसे सब जीव संतुष्ट होते हैं। इस कारण उसीका बोलना योग्य है बचनमें दरिद्रिता क्या ॥ १७ ॥

संसारकूटवृक्षस्य द्वैफलेश्च मृतोपमे ॥
सुभाषितं च सुस्वादुं संगतिः सुजनेजने ॥१८॥

टीका—संसाररूप कूटवृक्षके दोही फल हैं। रसीला प्रियबचन और सज्जनके साथ संगति ॥ १८ ॥

बहुजन्मसुचाभ्यस्तंदानमध्ययनंतपः ॥
तेनैवाभ्यासयोगेनदेहभीचाभ्यस्यतेपुनः ॥ १९ ॥

टीका—जो जन्म जन्म दान, पठना, तप, इनका अभ्यास किया जाता है उस अभ्यासके योगसे देहका अभ्यास फिर फिर करता है ॥ १९ ॥

पुस्तके षुचयाविद्या परहस्तेषु यद्धनम् ॥
उत्पन्नेषु चक्कार्येषु न साविद्यां न तद्धनम् ॥ २० ॥

टीका—जो विद्या पुस्तकोंहीं में रहती है और दूसरोंके हाथों में जो धन रहता है, काम पड़ाजानेपर न विद्या है न वह धन है ॥

इतिवृद्धचाणक्ये पोदशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

— : ० + : —

अथ सप्तदशोऽध्याय प्रारंभः १७

पुस्तकप्रत्ययाधीतं नाधीतं गुरुसन्निधौ ॥
सभामध्येनशोभंते जारगर्भाइवत्त्वियः ॥ १ ॥

टीका—जिनने केवल पुस्तकके प्रतितसे पढ़ा गुरुके निकट न पढ़ा वे सभाके बीच व्यभिचारसे गर्भवाली स्त्रियोंके समान नहीं शोभते ॥ १ ॥

कृतेप्रतिकृतिं कुर्याद्विंसनेप्रतिहिंसनम् ॥
तत्रदोषोनपतिदुष्टेदुष्टं समाचरेत् ॥ २ ॥

टीका—उपकार करनेपर प्रत्युपकार करना चाहिये और मारनेपर मारना इसमें अपराध नहीं होता इस कारणकि, दुष्टता करनेपर दुष्टताका आचरण करना उचित होता है ॥ २ ॥

यदूदूरंयदूदूराराध्यंयच्चदूरेव्यवस्थितम् ॥
तत्सर्वतपसासाध्यंतपोहिदुरतिक्रमम् ॥ ३ ॥

टीका—जो दूरहै जिसकी आराधना नहीं होसकती और जो दूर वर्तमान है वे सब तपसे सिद्ध होसकते हैं इस कारण सबसे प्रबल तप है ॥ ३ ॥

लोभश्चेदगुणेनकिंपिशुनतायद्यस्तिकिंपातकैः
सत्यंचेत्पसाचकिंशुचिमनोयद्यस्तितीर्थेनकिंम्
सौजन्यंयदिकिंगुणैः सुमहिमायद्यस्तिकिं
मंडनैः सद्विद्यायदिकिंधनैरपयशोयद्यस्तिकिं
मृत्युना ॥ ४ ॥

टीका—यदि लोभ है तो दूसरे दोषसे क्या यदि चुगली है तो और पाँपोंसे क्या, यदि मन सत्यता है तो तपसे क्या यदि मन स्वच्छ है तो तीर्थसे क्या, यदि सज्जनता है तो दूसरे गुणसे क्या, यदि महिमा है तो भूषणोंसे क्या, यदि अच्छी विद्या है तो धनसे क्या, और यदि अपयश है तो मृत्युसे क्या ॥ ४ ॥

पितारत्नाकरोयस्यलक्ष्मीर्यस्यसहोदरी ॥
संखोभिक्षाटनंकुर्यान्नदत्तमुपतिष्ठते ॥ ५ ॥

टीका—जिसका पिता रत्नोंकी खान समुद्र है, लक्ष्मीं
जिसकी बहिन, ऐसा शंख भीख मांगता है सच है
बिना दिया नहीं मिलता ॥ ५ ॥

अशक्ततस्तुभवेत्साधुर्वृह्मचारीचनिर्धनः ॥
व्याधिष्ठोदेवभक्तश्ववृद्धानारीपतिवृता ॥ ६ ॥

टीका—शक्तिहीन साधु होता है, निर्धन व्रह्मचारि,
रोग्रस्त देवताका भक्त होता है और वृद्ध स्त्री
पतिवृता होती है ॥ ६ ॥

नान्नोदकसमंदानं नतिथिर्द्वादशीसमा ॥
नगायत्र्याःपरोमंत्रो नमातुदैवतंपरम् ॥ ७ ॥

टीका—अन्न जलके समान कोई दान नहीं है, न
द्वादशीके समान तिथि, गायत्रीसे बढ़कर कोई संत्र
नहीं है न मातासे बढ़कर कोई देवता है ॥ ७ ॥

तक्षकस्यविषंदंते मक्षिकायाविषंशिरेः ॥
वृश्चिकस्यविषंपुच्छे सर्वगेदुर्जनेविषम् ॥ ८ ॥

टीका—सांपके दांतमें विष रहता है, मक्षिके सिरमें
विष है, विच्छुकी पूँछमें विष है सब अंगोंमें दुर्जन
विषही से भरा रहता है ॥ ८ ॥

पत्युराज्ञांविनानारी उपोस्यवृताचारिणी ॥
आयुष्यांहरतेभर्तुःसानारीनरकंब्रजेत् ॥ ९ ॥

टीका—पतिकी आज्ञा बिना उपवास वृत्त करनेवाली स्त्री स्वामीकी आयुको हरती है और वह स्त्री आप नरकमें जाती है ॥ ६ ॥

नदानैःशुद्धयतेनारी नोपवासशतैरपि ॥
नतीर्थसेवयातद्वद्धर्तुः पादोद्दकैर्यथा ॥ १० ॥

टीका—न दानसे, न सैंकड़ों उपवासों से, न तीर्थ के सेवन से स्त्री वैसी शुद्ध होती है, जैसी स्वामी के चरणोदकसे ॥ १० ॥

पादशेषंपीतशेषं संध्याशेषंतथैवच ॥
श्वानमूत्रसमंतोयं पीत्वाचांद्रायणंचरेत् ॥ ११ ॥

टीका—पांव धोनेसे जो जल बचता है, और पीनेसे जो जल बचजाता है और सन्ध्या करनेपर जो अवशिष्ट जल है वह कुत्ते के मूत्रके समान है उसको पीकर चांद्रायणका ब्रत करना चाहिये ॥ ११ ॥

दानेनपाणिर्नतुकंकणेनस्नानेनशुद्धिर्नतुचंद्र
नेन ॥ मानेनतृप्तिर्नतुभोजनेनज्ञानेनमुक्तिर्न
तुमंडनेन ॥ १२ ॥

टीका—दान से हाथ शोभता है कंकण से नहीं, स्नान से शरीर शुद्ध होता है चन्द्रनसे नहीं, सन्मान से तृप्ति होती है भोजन से नहीं, ज्ञान से मुक्ति होती है, छापा तिलकादि भूषणसे नहीं ॥ १२ ॥

नापितस्यगृहेक्षोरं पाषाणेगंधलेपनम् ॥
आत्मरूपंजलेपश्चक्रस्यापिश्रियंहरेत् ॥ ३

टीका—नाईके घरपर बार बनवाने वाले, पत्थर परसे लेकर चन्दन लेपन करनेवाला, अपने रूपको पानीमें देखनेवाला इन्द्रभी हो तो उसकी लक्ष्मीको हरलेते हैं ॥ १२ ॥

सद्यःप्रज्ञाहरातुंडी सद्यःप्रज्ञाकरीवचा ॥
सद्यःशक्तिहरानारी सद्यःशक्तिकरंपयः॥ १४॥

टीका—कुँदरू शीघ्रही बुद्धि हरलेता है और बच भटपट बुद्धि देता है खी तुरंतही शक्ति हरलेती है दूध शीघ्रही बल कर देता है ॥ १४ ॥

यदिरामायदिरमायदितनयोविनंथगुणोपेतः ॥
तनयेतनयोत्पत्तिःसुखवरनगरेकिमाधिक्यस्त् ॥ ५

टीका—यदि कांता है, यदि लक्ष्मी वर्तमान है, यदि पुत्र सुशीलता गुणसे युक्त है, और पुत्रके पुत्रकी उत्पत्ति हुई हो, फिर देवलोकमें इससे अधिक क्या है ? ॥ १५ ॥

परोपकारणंयेषाजागर्तिहृदयेसताम् ॥
नश्यन्तिविपदस्तेषासंपदःस्युःपदेपदे ॥ १६ ॥

टीका—जिम सज्जनोंके हृदयमें परोपकार जागरूक

है उनकी विपत्ति नष्ट होजाती है और पदपदमें
संपत्ति होती है ॥ १६ ॥

आहारनिद्राभयमैथुनानि समानिचैतानिनृणा
पशुनाम् ॥ ज्ञानं नराणामधिकोविशेषोज्ञानेन
हीनाः पशुभिः समानाः ॥ १७ ॥

टीका—भोजन निद्रा भय मैथुन ये मनुष्य और
पशुओंके समान ही हैं मनुष्योंको केवल ज्ञान अधिक
विशेष है ज्ञानसे राहित नर पशुके समान है ॥ १७ ॥
दानार्थिनो मधुकराय दिकर्णतालै दूरी कृताः क-
रिवरेण मदान्ध बुद्ध्या ॥ तस्यैव गण्डयुग मण्डन
हानि रेषाभृंगाः पुनर्विकच पद्मवनैव संति ॥ १८ ॥

टीका—यदि मदान्ध गजराजने गजमदके अर्थी भौंरों
को मदान्धतासे कर्णके तालोंसे दूर किया तो यह
उसीके दोनों गण्डस्थलकी शोभाकी हानि भई भौंरे
फिर विकासित कमल बनमें बसते हैं ॥ १८ ॥ तात्पर्य यह
है कि, यदि किसी निर्गुण मदान्ध राजा वा धनीके
निकट कोई गुणी जापडे उस समय मदान्धों को
गुणीको आदर न करना मानों अपनी लक्ष्मीकी शोभा
की हानि करनी है काल निरवधि हैं और पृथ्वी अनंत
है गुणीका आदर कहीं न कहीं किसी समय होहीगा.

राजावेश्याय मश्चाग्निस्तस्करो वाल्याचकाँ ॥
परदुःखं न जानंति अष्टमो ग्रामकंटकः ॥ १९ ॥

टीका-राजा, वेश्या, यम, अग्नी, चौर, बालक, याचक और आठवाँ ग्रामकंटक अर्थात् ग्रामनिवासियों को पीड़ा देकर अपना निर्वाह करनेवाला ये दूसरेके दुःख को नहीं जानते हैं ॥ १९ ॥

अधःपश्यसि किं बाले पतितं तव किं भुवि ॥
रेष्मूर्खं न जानासि गतं तारुण्यमौक्तिकम् ॥ २० ॥

टीका-हेबाला ! तू नीचे क्यों देखती है पृथ्वीपर तेरा क्या गिरपड़ा है तब स्त्रीने कहा अरे मूर्ख तू नहीं जानता कि, मेरा तरुणता रूप सोती चलागया ॥ २० ॥

व्यालाश्रया पिविफलापिसकंटकापिवक्रापिं
किलभवापिदुरासदापि ॥ गन्धेन बन्धुरसि क्रेत-
क्षिसर्वजंतोः एको गुणः खलु निहंति समस्तदोषान्

टीका-हेकेतकी ! यद्यपि तू सांपों का घर है विफल है तुझमें काटेभी हैं टेढ़ी हैं कीचड़ में तेरी उत्तरत्ति है और तू दुःख से मिज्जतीभी है तथापि एक गंध गुणसे सब प्राणियोंकी बन्धु हो रही है निश्चय है कि, युक्तभी गुण दोषोंका नाश करदेता है ॥ २१ ॥

इति श्री वृद्ध चाणक्यनीतिदर्पणं सप्तदशोऽध्यायः १७
इति श्री चाणक्यनीतिदर्पणः भाषार्थीका सहितो समाप्ता ॥

विकृपार्थ पुस्तकैँ ।

—॥३॥—

दुर्गासप्तशती सुन्दर मोटे अक्षरों में खुँड़ो पत्र ॥=)	
सारस्वत मूल सजिलद	=)
श्रीमद्भगवद्गीता पहच्छेइ पदार्थ सहित ॥॥)	
सत्यनारायण की कथा भाषा टीका सहित ॥)	
सत्यनारायण की कथा, दोहा चौपाई में ॥-॥)	
महिम्न मोटे अक्षर	-)
सन्ध्या यजुर्वेदी	-)
शब्द रूपावलि	=)
धातु रूपावलि	=)
सन्ध्या गुटका	-)
देवऋषि तर्पण	-)
श्री तुलसीदासजी कुत रामायण छपरही है	
सर्व पूजा	=)॥
रामस्तव राज	=)
लक्ष्मी स्तोत्र (लक्ष्मीजी महाराजको प्रसन्न रखना हो तो इसका पाठ अवश्य कीजिये फिर देखिये कि लक्ष्मी भंडार भराही रहै)॥	
सूर्य पुराण	=)
नवश्रह स्तोत्र (इसके पाठ करनेसे ग्रहव्याधि पलायमान होती है पुस्तक मूल्य भी एक ही अरना है फिर विलम्ब क्यों करते हैं जीजिये पाठ करके तत्काल फल देखें जीजिये	

विकृपार्थ पुस्तके ।

गोगालहरी संस्कृत (कविवर जगन्नाथभट्टकृत
गंगा महाराणीको प्रसन्न करनेका एक सहज
उपाय है उक्त कवि ने यह स्तुति गाकर यत्नी
संसर्गके पातकसे छुटकारा पायाथा तो क्या
आपके पापों का नाश होना कुछ दुष्करहै) =>

अर्जुन गीता)
संध्या सामाजिक ईश्वर प्रार्थना सहित)||

गोपाल सहस्र नाम सादा)
" " रेशमी पुढा)

विष्णु सहस्र नाम सादा)
" " रेशमी पुढा)

चाणक्यनीति दर्पण भाषा टीका सजिलह)
श्री भर्तृहरिशतक नीति, शृंगार, वैराग्य, भाषा

टीका सहित सम्पूर्ण अति उत्तम बडे अक्षर में

छपरहा है शीघ्रही तथ्यार होगा ॥

बाबू दीपचन्द मैनेजर
मुलक्रान्तिमल्क प्रिन्टिंग प्रेस
छाठ नाम्बर

